श्री

मोक्षमार्गकी सच्ची कहानियां।

प्रकाशक-

बुद्धिलाल श्रावक, पाठक, जैनशाला-

लाडनूं; जिला जोधपुर।

मूल्य-

एक प्रतिका ।≡) आना।

द्वितीयवार १०००

ईस्वी सन् १९२२] [वीर सं. २४५८.

मुद्रक-मूलचंद किसनदास कापडिया, "जैनविजय" प्रि० प्रेस,

खपाटिया चकला-सूरत।

जैनविधि पूर्वक विवाह।

बहुधा कई महाशय अपने संतानोंके विवाह जैन विधिसे कराया चाहते हैं परन्तु विवाह विधि करानेवाले जैन ग्रहस्थाचार्यके बिना उन्हें मिथ्यामार्गमें ही पदार्पण करना पड़ता है। अतः हम सर्वसाधारण जैन महानुभावोंको विदित करते हैं कि, जैन विधिसे विवाह करनेकी इच्छा हो तो हमें पहिलेसे पत्र लिखें; हम अवकाशके अनुसार उनका वह पवित्र कार्य करा देंगे।

पुस्तक संशोधन।

कोई कोई महाशय अशुद्ध और भाषाशैलीके विपरीत पुस्तकें छपा देते हैं। अथवा नवीन वा प्राचीन ग्रंथकी प्रेस कापी निर्माण करते हैं परंतु संशोधनके अभावमें छपानेमें रुक जाते हैं, ऐसा होनेसे भाषाके साहित्यको बड़ी हानि पहुंचती है।

इस लिये हम सर्वसाधारण सज्जनोंको विदित करते हैं कि वे कोई हिन्दी भाषाका जैन ग्रंथ वा हिन्दीकी पुस्तक हमारे पास संशोधनार्थ भेजेंगे तो हम उचित परिश्रम लेकर योग्यतानुसार संशोधन कर देंगे और उचित सम्मति देंगे।

यदि कोई महाशय किसी भाषा जैन ग्रंथकी प्रेस कापी तैयार करावेंगे तो वह भी कर देंगे।

हमारा वर्तमान पता—

बुद्धिलाल श्रावक, पाठक जैनशाला

पो. लाडनूं जिला जोधपुर।

प्रस्तावना ।

पाठक ! यद्यपि श्री रत्नकरंड श्रावकाचारजीकी कई भाषा टीकाएं मुद्रित हुई हैं, परन्तु ग्रंथमें जो कथाप्रसंग आये हैं उनकी कथाएं किसी टीकामें नहीं हैं। पं० सदासुखजी तो इस ग्रंथकी एक महा टीका रचके जगतका हित करगये हैं, परंतु उन्होंने भी कथाओंके विषयमें यही लिखा है कि अन्य ग्रंथोंसे जानना। हां, संस्कृत टीकाकार श्री प्रभाचन्द्राचार्यजी **जैनकथा द्वाविंशति** रचकर, हमारी इस आवश्यक्ताकी पूर्ति करगये हैं, परंतु वह संस्कृत भाषामें होनेसे सुखसाध्य नहीं है। और श्री रत्नकरंडजीको संपूर्ण परीक्षालयोंके पठनक्रममें समादरित स्थान मिलनेसे पाठशालाओंके पाठकों तथा विद्यार्थियोंका कथाओंके जाने विना निर्वाह नहीं है। इसके सिवाय स्वाध्याय करनेवाले साधारण जनोंको भी उन कथाओंके जाननेकी उत्कट इच्छा रहती है इसलिये मैंने यह प्रयत्न किया है। आशा है कि पाठकगण इससे लाभ उठावेंगे।

इस ग्रंथकी रचना, श्री **जैनकथा सुमनावली** नामकी एक मराठी पुस्तकके सहारे; **श्री आराधनाकथाकोष, श्री पुण्याश्रवकथाकोष, श्री चारदानकथा, श्री रक्षाबंधन कथा** आदि ग्रंथोंका स्वाध्याय करके की है। तौ भी सापाके दोष और अन्यथा रचना हो जाना संभव है। परंतु मैंने कषाय भावसे सदोष और अन्यथा रचना नहीं की है। अतः पाठकोंसे शुद्ध कर पढ़नेकी प्रार्थना है।

प्रार्थी—

बुद्धिलाल श्रावक, पाठक, जैनशाला, लाडनूं (मारवाड)

सूचीपत्र ।

श्री सम्यक् चारित्राय नमः।

मोक्षमार्गकी सच्ची कहानियाँ।

मंगलाचरण-गीताछंद मात्रा २८।

समकित सहित आचार[1] ही, संसारमें इक सार है।
जिनने किया आचरण उनको, नमन सौ सौ बार है॥
उनके गुणोंके कथनसे, गुण ग्रहण करना चाहिये।
अरु पापियोंका हाल सुनके, पाप तजना चाहिये॥१॥

श्री सम्यक् दर्शनकी चर्चा।

जिस प्रकार शरीरमें आठ अंग[2] होते हैं, और वे अपने अंगी अर्थात् शरीरसे अलहदा नहीं होते, उनके बिना उनका अंगी अर्थात् शरीर नहीं होता। यदि आठमेंसे एक भी कम हो तो शरीर अधूरा

---

१. चारित्र।

२. सिर नितम्ब उर पीठकर, जुगल जुगल पद टेक।
आठ अंग ये तन वर्पे, और उपांग अनेक॥१॥

अर्थात्-माथा, चूतड़, (पोंद), छाती, पीठ, दो हाथ, दो पांव, ये आठ अंग शरीरमें होते हैं।

कहलाता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शनके भी आठ अंग होते हैं, और वे अपने अंगी अर्थात् सम्यग्दर्शनसे जुदे नहीं होते। उन अंगोंके विना उनका अंगी अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं होता, यदि आठ अंगोंमेंसे एक भी कम हो तो सम्यग्दर्शन अपूर्ण रहता है।

सारांश–आठों अंगोंका समूह ही सम्यग्दर्शन[1] होता है। उन आठ अंगोंके नाम ये हैं–निःशंकित अंग, निकांक्षित अंग, निर्विचिकित्सित अंग, अमूढ़दृष्टि अंग, उपगूहन अंग, स्थितिकरण अंग, वात्सल्य अंग और प्रभावना अंग।

श्री रत्नकरंड श्रावकाचारजीमें कहा है कि पहिले अंगमें **अंजन चोर**, दूसरेमें **अनंतमतीबाई**, तीसरेमें **उद्दायन राजा**, चौथेमें **रेवती रानी**, पांचवेंमें **जिनेन्द्र भक्त**, छठवेंमें **वारिषेण**, सातवेंमें **विष्णुकुमार मुनि** व आठवेंमें **वज्रकुमार मुनि**, बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। इन आठों महात्माओंकी कहानियोंसे हमको आठों अंग सीखना चाहिये। उनमेंसे अंजन चोरकी कहानी इस प्रकार है।

---

(१) अंजन चोरकी कहानी।

राजगृही नगरीमें **अंजन चोर** रहता था। वह केवल चोर ही नहीं था, वरन् व्यभिचारी भी था। विलासिनी नामक

---

१. सम्यक् दर्शनको सहज बोलीमें समकित कहते है।

वेश्यासे उसका बहुत प्रेम था। एक दिन वेश्याने वहांके राजा प्रजापालकी रानीके गलेमें रत्नोंका हार देखा और चाहा कि यह रत्नहार मुझे मिल जावे। जब अँधेरे पक्षकी चौदसकी रात्रिको अंजन चोर वेश्याके घर गया तो उसने कहा कि मैं अपने ऊपर आपका सच्चा प्रेम तभी समझूंगी जब आप रानीके गलेका हार मुझे ला देवेंगे। यह सुनकर अंजन चोर राजमहलको गया। वहां रानी नींदमें सो रही थीं। चोरने बड़ी सावधानीसे रानीके गलेका हार निकालके चल दिया। वह हार लेकर बाहेर निकलने ही पाया था कि, इतनेमें महलके पहरेदार और शहरके कोतवालने उसे चमकता हुआ हार ले जाते देखा। उन्होंने चोरको उसी समय पकड़ लिया। आपसमें बहुत खैंचतान हुई, अंतमें चोर उन दोनोंके हाथसे छूट गया और हार वहीं छोड़कर चल भागा। भागते २ वह मरघटामें जा पहुंचा। वहां पहुंचकर देखता क्या है कि, एक **सोमदत्त** नामक मनुष्य बड़के वृक्षसे बंधे हुए सींकेपर चढ़ता और उतरता है। सोमदत्तका यह हाल देखकर अंजनने उसका कारण पूछा। सोमदत्तने कहा कि इस नगरमें एक **जिनदास** सेठ हैं, उन्हें आकाशगामिनी विद्या सिद्ध है। उन्होंने मुझे विद्या सिद्ध करनेकी रीति बताई है, वह इस प्रकार है कि, "अँधेरे पक्षकी चौदसकी रात्रिको श्मशान-भूमिमें बड़के वृक्षकी डालीसे एकसौ आठ रस्सीका सींका बांधो। सींकेके नीचे धरतीपर भाला, बरछी, तलवार आदि नुकीले हथियार ऊपरको नोंके करके खड़े करो और सींकेमें बैठकर णमोकार मंत्र पढ़ते

१. जिसके बलसे विमानमें बैठकर युरोपके लोगोंके समान आकाशमें चढ़ सकते हैं।

हुए चाकूसे एक २ रस्सी काटते जाओ। अंतिम रस्सी काटनेपर विद्या सिद्ध होवेगी और तुम्हें अधर ही झेल लेवेगी"। परंतु भाई, मुझे संशय लग रहा है कि "यदि, सेठजीका बचन झूठ निकले" तो मेरे प्राण जायँ। यह सुनकर अंजन चोरने विचारा कि, मैं सिपाहियोंके हाथसे छूटकर आया हूं, पकड़े जानेपर मरना तो है ही; यदि यह विद्या सीख लेऊंगा तो बच भी जाऊंगा। इसलिये अंजनने सोमदत्तके कहनेपर पक्का विश्वास किया और मंत्रविधि सीखकर बड़े संतोषके साथ सींकेके अंदर बैठा। फिर निःशंक होकर पंच नमस्कार मंत्र पढ़ते हुए चाकूसे एक २ रस्सी काटने लगा। सब रस्सियां कट जानेके बाद, हथियारोंपर गिरनेको ही था कि, आकाशगामिनी विद्याने उसे झेल लिया और कहने लगी कि, मैं आपको सिद्ध हुई हूं अब आप जैसी आज्ञा देंगे मैं वैसा ही करूंगी। तब अंजन बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि, मुझे जिनदास सेठके पास ले चलो। विद्या उसे विमानमें बैठाकर सुदर्शन मेरुपर ले गई, जहां सेठ जिनदासजी वंदनाको गये थे। वहां अंजनने पहले तो अकृत्रिम[1] जिन चैत्यालयोंकी भाव सहित वन्दना की। फिर वह सेठसे नमस्कार करके कहने लगा कि, महाराज आपके प्रसादसे मुझे इतना बड़ा लाभ हुआ है। अब आप कृपा करके मुझे पवित्र जैन धर्मका उपदेश दीजिये। तब वे उसे एक मुनि महाराजके पास ले गये। वहां उन्होंने मुनि और श्रावकका धर्म सुनाया। उसे सुनकर अंजनका चित्त बहुत कोमल

१. ये मंदिर बिना बनाये अपने आप ही बने हैं।

हो गया। वे अपने पापोंपर बहुत पछताये और मुनिमहाराजके पास दीक्षा लेकर तप करने लगे और थोड़े ही दिनोंमें केवलज्ञानी बनकर वे **अंजन निरंजन हो गये**।

सारांश, हम सबको उचित है कि जैन धर्मके तत्वोंपर अंजन चोरके समान पक्का विश्वास करें और सोमदत्तके समान संशय न करें।

---

(२) बाई अनंतमतीकी कहानी।

चम्पानगरीमें प्रियदत्त सेठ रहते थे। उनकी पुत्रीका नाम **अनंतमती** था। वह रूपवान तो थी ही, पर सेठजीने विद्याभ्यास कराके सोनेमें सुगंध ही मिला दी थी। अष्टान्हिकाके पहिले, सेठ **प्रियदत्त** श्री धर्मकिर्ति मुनिके पास गये और अपनी बेटीको भी साथमें ले गये। वहां उन्होंने **मुनिराजके** पास आठ दिनका ब्रह्मचर्य व्रत लिया। पिताकी देखादेखी बाई अनंतमतीने भी ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। उस समय तो वह छोटी थी, परन्तु जब जवान हुई और सेठजी उसका विवाह करने लगे तो उसने नहीं करवाया।

एक दिन वह बगीचेमें झूला झूल रही थी कि, दक्षिण श्रेणीका कुंडलमंडित विद्याधर अपनी स्त्री सहित विमानमें बैठा हुआ वहांसे निकला और अनन्तमतीको देखते ही मोहित हो गया। इसने वह जल्दीसे अपनी स्त्रीको घरपर छोड़ आया और

---

१ मोक्ष पधारे।

वहां आकर अनंतमतीको उठाकर चल दिया। यहां कुंडलमंडितकी स्त्रीको कुछ संदेह हुआ और वह घरसे लौट आई। उसे आती देखकर उस पापीने एक भयंकर वनमें अनंतमतीको चुपचाप छोड़ दिया। वेचारी वहां अकेली रो रही थी कि, भीलोंका राजा **भीम** यहां वहां फिरता हुआ उस स्थानपर आ पहुंचा, और उसे धीरज बंधाकर वह अपने घर ले गया। परन्तु भीमने भी उसे अपनी स्त्री बनाना चाहा और रात्रिको जबरदस्ती उसका शील भंग करनेकी कुचेष्टा की। तब वहांके वनदेवताने क्रोधित होकर भीमको बहुत मार लगाई। पश्चात भीमने उसे **पुष्पक** नामके व्यापारीको सौंपी। व्यापारीने भी अनंतमतीके साथ पाप विचारा, पर वह उसके वशमें न हुई। तब पुष्पकने उसे **कामसेना** नामकी वेश्याको दे दी। वह वेश्या भी बाई अनंतमतीसे वेश्याकर्म करानेका उपाय करने लगी, पर वह सती अपने सतीत्वसे न डिगी। तब उस वेश्याने अयोध्याके राजा **सिंहराजके** पास भेज दिया। वह दुष्ट भी कामेच्छा पूरी करनेके लिये बाई अनंतमतीके साथ जोरावरी करने लगा। तब वहांके नगर-देवताने प्रगट होकर बाईके शीलकी रक्षा की। यद्यपि बाई अनंतमतीको शीलधर्मसे चिगानेके लिये **कुण्डलमंडित, भिल्लराज, पुष्पक, कामसेना** और **सिंहराजने** बड़े २ प्रयत्न किये पर वह अपने धर्मसे नहीं चूकी। अंतमें जहां तहां भटकती भटकती **पद्मश्री** अर्जिकाके पास अयोध्यामें रहने लगी।

यहां सेठ प्रियदत्त, प्रिय अनंतमतीके विछोहका दुःख भुलानेके लिये यात्रा करते हुए, अयोध्या पहुंचे और अपने साले

जिनदत्तके यहां ठहरे। बाई अनन्तमती सेठ जिनदत्तजीके यहां जाया करती थी और रसोई तथा रँग गुलालसे चोक पूरकर आंगनमें शोभा किया करती थी। उस दिन नित्यकीनाई आंगनमें मंडल करके वह चली गई थी कि, सेठ प्रियदत्त स्नान पूजनके बाद सेठ जिनदत्तके चोकेमें भोजनोंको गये, और वह मंडल देखते ही उन्हें सन्देह हो गया। उन्होंने सेठ जिनदत्तसे कहा कि जिस बाईने यह चौक पूरा है उसे बुलावें। जिनदत्तने बाई अनंतमतीको बुला दिया और दोनों पिता पुत्री मिलकर बहुत आनंदित हुए। उनकी भेंटसे सेठ जिनदत्तने बड़ा आनंद मनाया। कुछ दिनोंके बाद सेठ प्रियदत्तने बाई अनंतमतीसे घर चलनेको कहा। पर बाईने उत्तर दिया "पिताजी, मैं इस असार संसारका हाल खूब जान चुकी हूं, इससे अब मैं जिनेश्वरी दीक्षा लेऊंगी।" सेठने बाईको बहुत समझाया पर वह न मानी। तब पद्मश्री अर्जिकाके पास दीक्षा लेनेकी आज्ञा दे दी। बाई अनंतमतीने जिन दीक्षा लेकर उत्तम तप किया और आयुके अंतमें समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर बारहवें स्वर्गमें देव-पद पाया। और फिर " तहँ तें चय नर जन्म पाय मुनि ह्वै शिव पाया"।

मनुष्योंको उचित है कि इन्द्रियोंके विषयोंमें मग्न न होकर बाई अनंतमतीके समान निःकांक्षित गुणको निर्मल करें।

---

(३) उद्दायन राजाकी कथा।

कच्छ देशमें रोरक नामका नगर था। वहांके राजाका नाम उद्दायन था और उसकी स्त्रीका नाम प्रभावती था।

एक समय पहले स्वर्गके इन्द्र, देवताओंकी सभामें बैठे हुए थे। वे देवताओंसे कहने लगे कि, राजा उद्दायन ग्लानि जीतनेमें बहुत पक्का है। उनमेंसे वासव नामके देवताके मनमें आया कि, राजाकी परीक्षा करें। उसने साधुका भेष धरके अपने शरीरको घिनावना, रोगी तथा दुर्गंधित बना लिया और राजाके दरवाजे परसे जा निकला। भोजनका समय था इसलिये राजाने, साधुको देखते ही कहा कि, हे महाराज ! अन्न जल शुद्ध है। खड़े रहो ! खड़े रहो !

राजा उसे सच्चा मुनि जानकर अपने घरमें ले गये और ऊँचे आसनपर बैठाया। राजा रानीने अष्ट द्रव्यसे उनकी पूजा की और भक्ति सहित भोजन कराये। उस बनावटी मुनिको तो राजाकी परीक्षा करना थी, इसलिये उसने वहां ही उछाल कर दिया और उसकी इतनी ग्लानि बढ़ी कि राजाके पासके नौकर चाकर भी उसे न सह सके और भाग गये। वहां राजा रानीके सिवाय कोई न बचा। फिर मुनिने अबकी बार राजा और रानीके ऊपर ही उछाल कर दिया। इतना होनेपर भी राजाने बिलकुल ग्लानि नहीं की। वे पछतावा करने लगे कि, हाय मुझ पापीसे भोजन देनेमें कुछ भूल हो गई है, अथवा मैंने पूर्वजन्ममें कोई महा पाप किया है, जिससे आहारदानमें विघ्न आया। वह पानी लाया और साधुका शरीर बड़ी सावधानीसे धोने लगा ! देवने राजाकी गहरी भक्ति देख अपना असली रूप दिखा दिया। फिर नमस्कार करके राजाकी बड़ाई करने लगा और सब सच्चा हाल कह सुनाया।

देखो! राजा उद्दायनकी देवताओंने बड़ाई की। उनके समान हम सबको ग्लानि जीतना चाहिये। उछाल व दूसरे दुर्गंधित पदार्थ पुद्गल ही हैं, उनसे ग्लानि करना अज्ञान है।

---

(४) महारानी रेवतीकी कथा।

विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मेघकूट नामका नगर है। वहांके राजा **चंद्रप्रभु** थे। उन्हें कई विद्याएं सिद्ध थीं। एक दिन राजाने अपने पुत्रको राज्य सौंपकर यात्राको चल दिया। वे चलते चलते दक्षिण देशके मथुरा नगरमें पहुचे। वहां एक **गुप्ताचार्य** मुनि थे, उनके पास क्षुल्लक[1] बनकर रहने लगे, परन्तु सब विद्याएं नहीं छोड़ीं। धर्मोपदेश सुनते सुनते एक दिन क्षुल्लकजीका विचार हुआ कि, उत्तर देशकी मथुरा नगरीको जावें। उन्होंने मुनिराजसे कहा कि, आपको कोई संदेशा कहना हो तो कहिये। मुनिराजने उत्तर दिया कि, "वहां सुव्रत मुनि हैं उनको नमस्कार और रानी रेवतीको धर्मवृद्धि कहना।

क्षुल्लकजीको मालूम था कि वहां ग्यारह अंगके जाननेवाले **भव्यसेन** मुनि भी हैं, परन्तु उनके लिये गुप्ताचार्यने कुछ भी नहीं कहा। इसलिये क्षुल्लकजीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने फिरसे दुहराया कि, हे महाराज! किसी औरसे तो कुछ नहीं कहना है? मुनिने उत्तर दिया कि, किसीसे कुछ नहीं।

तब क्षुल्लकजी चुपचाप चले गये और वहां पहुंचकर इस

---

१ श्रावकके चारित्रकी ग्यारह प्रतिमाएं होती हैं उनमेंसे ग्यारहवीं प्रतिमाका एक भाग क्षुल्लक होता है।

बातका पता लगाना चाहा कि, "गुप्ताचार्यने भव्यसेनको नमस्कार क्यों नहीं कहा और उन दोनोंको क्यों कहा।"

पहिले वे सुव्रत मुनिके पास गये। उनका उत्तम चारित्र और वात्सल्य भाव देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें गुप्ताचार्य्यजी-की ओरसे नमस्कार कहा और उत्तरमें धर्मवृद्धि सुनकर वहांसे चल दिया।

पश्चात् वे भव्यसेनके पास गये और उसे भी नमस्कार किया। पर अभिमानी भव्यसेनने क्षुल्लकजीकी ओर देखा भी नहीं। "ठीक है, मिथ्यात्वके उदयमें ग्यारह अंग तकका ज्ञान भी जीवको हीतकारी नहीं होता"। जब भव्यसेन वस्तीके बाहर टट्टी फिरनेको निकले तो क्षुल्लक भी साथ हो गये और विद्याके बलसे वहां हरियाली कर दी।

जैन शास्त्रोंमें हरी वनस्पतिको सजीव कहा है, जैन मुनि उसकी विराधना नहीं करते, पर भव्यसेनने उसकी कुछ भी पर-वाह न की और वहीं टट्टी फिर ली। तब क्षुल्लकजीने अपनी विद्याके बलसे उनके कमंडलुका पानी सुखा दिया और विद्याके बलसे पास ही एक तालाब बना दिया। तो भव्यसेनने उस तालाबसे ही बिना छाना पानी ले लिया तब तो क्षुल्लकजीको पूरा भरोसा हो गया कि, यह भव्यसेन नहीं "अभव्यसेन" है, इसी कारण गुप्ताचार्य्यने इसे नमस्कार नहीं भेजा है।

इसके बाद वे राजा वरुणकी रानी रेवतीकी परीक्षाके लिये गये और विद्याके बलसे चतुर्मुख ब्रह्माका रूप धरके पूर्व दिशाकी ओर सिंहासनपर बैठ गये। यह जानकर कि

साक्षात् ब्रह्माजी पधारे हैं, सब बस्तीके लोग उनकी पूजाको जाने लगे। यहां तक कि, राजा वरुण और भव्यसेन भी उस बनावटी ब्रह्माकी पूजाको गये, और रानी रेवतीसे भी कहा। रानीने उत्तर दिया कि वह साँचा ब्रह्मा नहीं है, कोई मायावी देव होगा।

दूसरे दिन वे क्षुल्लकजी, दक्षिण दिशाकी ओर शंख, चक्र, गदा, तलवार आदि लेकर चतुर्भुज विष्णु बनके, गरुड़पर बैठ गये। पहलेके समान सब लोग बँदनाको गये, पर रानी रेवतीने उत्तर दिया कि, जैन ग्रन्थोंमें नव नारायण कहे हैं। अब दसवां होना संभव ही नहीं है।

तीसरे दिन क्षुल्लकजी पश्चिम दिशाकी ओर माथेमें जटा, शरीरमें राख लगाके **शंकर**का रूप बनाके, बैलपर बैठ गये। सब ही लोग दर्शनोंको गये, पर रानी रेवतीने कहा कि, जैन शास्त्रमें ग्यारह रुद्र कहे हैं सो हो चुके, अब बारहवां होना असंभव है।

अंतमें क्षुल्लकजीने अपनी विद्याके बलसे उत्तरकी ओर झूठा समवशरण रचा। मानस्तंभ, गंधकुटी आदि बनाये। बनावटी इन्द्र गणधर, मुनि और बारह सभाओंकी रचना की और आप **महावीर भगवान्** बनकर दिव्यध्वनि करने लगे। अब तो लोगोंकी भक्तिका ठिकाना नहीं रहा। लोगोंको पूरा विश्वास हो गया था कि, अब रेवती रानी अवश्य ही दर्शनोंको जावेगी, और सबने खूब समझाया भी था। परन्तु वह जानती थी कि, चौबीस तीर्थंकर होना थे सो हो गये। अब पच्चीसवां कर्योंकर संभव है, इसलिये वह वहां भी नहीं गई। क्षुल्लकजीने जब

रानीको अपने मायाजालमें फँसते न देखा, तब, समझ लिया कि, इसका जैनधर्मपर सच्चा विश्वास है। क्षुल्लकजीने यह भी सोच लिया कि, महारानी रेवती सच्चे श्रद्धानवाली है, इसीसे गुप्ताचार्यने इसे धर्मवृद्धि कह भेजी थी। और भव्यसेन मिथ्यादृष्टि है इससे उसका नाम भी नहीं लिया था।

हम सबको चाहिये कि, रानी रेवतीके समान सांचे झूठेका विचार रक्खें और भव्यसेनके समान पाखण्ड न करें।

---

(५) सेठ जिनेंद्रभक्तकी कथा।

पटना शहरमें **यशोध्वज** राजा रहते थे। वे बड़े ही धर्मात्मा थे। परन्तु उनका पुत्र सुवीर बड़ा ही दुराचारी और चोरोंका सरदार था। एक दिन उसे मालूम हुआ कि तामलिप्त नगरमें **जिनेन्द्रभक्त** सेठ रहते हैं, उनके मकानके सातवें खण्डपर जिन चैत्यालय है और उसमें एक रत्नमयी प्रतिमाजी हैं। सुवीरने अपनी चोर-मण्डलीको बुलाकर कहा कि, देखें तुममेंसे कौन? उस रत्न मूर्तिको ला सकता है। उनमेंसे एक सूर्य नामके चोरने उत्तर दिया कि "यह तो बात ही क्या है पर इन्द्रके सिरका मुकुट भी मैं ला सक्ता हूं"। फिर वह चोर अपने उस सरदारसे आज्ञा लेकर तामलिप्त नगरको चला गया।

वहां पहुंचकर उसने ब्रह्मचारीका रूप धर लिया और इतना ढोंग फैलाया कि थोड़े ही दिनोंमें घरोंघर यह चर्चा होने लगी कि महाराजकी विद्या, चारित्र और तपको धन्य है, आप बड़े ही सज्जन और उत्तम उपदेशक हैं। सेठ जिनेन्द्रभक्तने

यह बात सुनी तब वे भी अपनी मित्र मंडली समेत ब्रह्मचारीके दर्शनोंको आये और अपने मंदिरजीकी बन्दनाके लिये उसे ले आये।

सेठजीका विचार विदेश जानेका था इसलिये उन्होंने अपने मंदिरजीकी पूजन और रखवालीके लिये ब्रह्मचारीसे ही विनय की, तो ब्रह्मचारीने अपना मतलब सधता देखकर उसे मंजूर कर लिया और प्रतिमाजी चुरा ले जानेकी घातमें रहने लगा।

सेठजीके रवाना होनेपर उस कपटी ब्रह्मचारीने आधी रातको प्रतिमाजी लेकर चल दिया। चमचमाती वस्तु ले जाते देखकर शहरका थानेदार उसके पीछे दौड़ा। तब चोर भागा और भागते भागते थक गया, पर थानेदारने पीछा न छोड़ा। अंतमें चोर भागता हुआ उन्हीं सेठजीके पास गया और पुकारने लगा कि बचाओ! बचाओ!!

यह दशा देखकर सेठको बड़ा अचरज हुआ। वे विचारने लगे कि यदि मैं सच्चा हाल कहे देता हूं तो जैन धर्मकी बड़ी निन्दा होती है और मेरे सम्यग्दर्शनको दोष लगेगा। इससे उन्होंने थानेदारसे कहा कि, हे भाई! ये चोर नहीं हैं, बड़े धर्मात्मा हैं ये प्रतिमाजीको चुराके नहीं लाये हैं, मैंने ही मगवाई थी।

जब थानेदार और सब लोग चले गये तब सेठजीने उस चोरको बुलाकर बहुत लज्जित किया और खूब डांट लगाई, तथा पापसे भयभीत रहनेका उपदेश देकर उसे विदा किया।

हम सबको चाहिये कि, यदि किसी मूर्ख मनुष्यके कारणसे धर्मकी निन्दा होती दिखे तो उसे प्रकट न करें, बरन गुप्त रखनेका उपाय करें।

अब यहां एक प्रश्न होता है कि, यदि अपराधीके दोष प्रगट न करेंगे तो वे कैसे हटेंगे ? इसका उत्तर यह है कि, जहां तहां प्रगट करने और समाचारपत्रोंमें छपानेसे धर्मकी महिमा घटती है तथा आर्तध्यान बढ़कर अपराधीके भाव और भी मलीन हो जाते हैं। इसलिये एकान्तमें बुलाकर उसे समझा देना चाहिये।

---

(६) वारिषेण राजपुत्रकी कथा।

बिहार प्रदेशके राजगृह नगरमें राजा **श्रेणिक** राज्य करते थे। उनके कई पुत्रोंमेंसे एक पुत्रका नाम **वारिषेण** था। वे छोटी ही उमरमें मुनि हो गये थे। वे मुनिराज जहां तहां फिरते और लोगोंको उपदेश देते हुए पलाशकूट नगरमें पहुंचे। वहां राजा श्रेणिकके मंत्रीका पुत्र **पुष्पडाल** रहता था। वह साचा सम्यग्दृष्टी और दान पूजामें तत्पर था।

जब वारिषेण मुनि उसके दरवाजेसे आहारको निकले तो पुष्पडालने उन्हें पड़गाहा[१] और भक्ति सहित आहार दिया। जब मुनि महाराज आहार ले चुके और बनको चले, तब पुष्पडालने सोचा कि जब ये गृहस्थीमें थे तब मेरे बड़े मित्र थे। इससे पुरानी मित्रता मेंटनेके लिये इन्हें कुछ दूर पहुंचा आना चाहिये। पुष्पडालके घरमें एक कानी स्त्री थी, उससे आज्ञा लेकर वह मुनिराजके पीछे पीछे चला। पुष्पडाल यह सोचता था कि जब मुनि महाराज कहेंगे कि, जाओ, घरको लौट जाओ,

---

१ हे मुनि, खड़े रहो, खड़े रहो, अन्न जल शुद्ध है इत्यादि कहनेको पड़गाहना कहते हैं।

तबट लौट पडूंगा। पर उन वीतरागी मुनिको इस दुनियादारीसे क्या लेना था। चाहे कोई आगे आओ, चाहे पीछे जाओ, चाहे साथ रहो, उन्हें कुछ मतलब न था। जब बहुत दूर निकल गये तब "बहुत दूर आ गये हैं" यह चेतानेके लिये पुष्पडालने महाराजसे कहा कि, यह वही बावड़ी है, यह वही बगीचा है जहां हम आप बड़े मौजसे खेला करते थे। यद्यपि वे मुनिराज इसके मनका सब हाल जानते थे, तौ भी उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब तो पुष्पडाल मुनिके आगे खड़ा हो गया और नमस्कार किया। मुनिराजने उसे धर्मवृद्धि देकर धर्मस्वरूप सुनाया।

ज्ञान वैराग्यका उपदेश सुनकर पुष्पडालका चित्त संसारसे उदास हो गया और उसने उन्हीं वारिषेण मुनिके पास दीक्षा ले ली। वह बहुत दिनों तक शास्त्रोंका अभ्यास करता रहा और अच्छी तरहसे संयम पालता रहा, परन्तु उसका चित्त उस कानी स्त्रीमें ही बसा करता था। उसे हमेशा उस एकाक्षी[1]की याद आया करती थी।

एक दिन वे दोनों गुरु चेला महावीरस्वामीके समवशरणमें गये और भगवान्‌को नमस्कार करके बैठे गये। वहां गंधर्वने एक श्लोक पढ़ा। उसका अर्थ यह था कि हे भगवान्! आपने पृथ्वी रूप स्त्रीको तीस वर्ष तक अच्छी तरह भोगके छोड़ दिया है। इसलिये वह बेचारी, आपके विछोहसे दुखी होकर, नदी रूप आंसुओंसे आपके नामको रो रही है[2]।

१. एक आंखवाली। २. यह अलंकार है, पृथ्वी जड़ है, उसका रोना संभव नहीं है।

यह सुनकर पुष्पडालको अपनी स्त्रीकी ओर गहरी खबर हो आई। वह मनमें सोचने लगा कि, ठीक है। मैंने आपनी स्त्रीको इकदम छोड़कर दीक्षा ले ली है, आज बारह वर्ष हो गये हैं, बेचारीका मुंह तक नहीं देखा। वह मेरे विछोहसे–मेरे नामको रोती होगी, इसलिये घर जाकर उसका समाधान करूंगा और कुछ दिन उनसे गृहस्थीका सुख देकर पीछे दीक्षा लेऊंगा। यह सोचकर पुष्पडाल घरकी ओर चलने लगा। तब अंतरयामी मुनि वारिषेणने उसे जाने न दिया। वे उसके मनकी बात जान गये और उसे धर्ममें स्थिर करना उचित समझा, इसलिये वे उसे अपने साथ राजगृहीको ले गये।

जब ये घरपर पहुंचे तब वारिषेणजीकी माता रानी चेलना संदेह करने लगी कि मेरा पुत्र वारिषेण मुनिव्रत न सध सकनेके कारण लौट आया है!! इसकी परीक्षा करनेके लिये उनके बैठनेको एक काठकी और एक सोनेकी चौकी रख दी। वारिषेण तो काठकी चौकीपर बैठे, पर पुष्पडाल सुवर्णकी चौकीपर बैठ गया। तब रानी चेलनाने समझ लिया कि वारिषेण सच्चे ही मुनि हैं और उनके इस साथीकी क्रिया उल्टी दिखती है। यह विचार रानीके मनमें चल रहा था कि वारिषेणने कहा, हे माता! **मेरी बत्तीसों स्त्रियोंको गहने और कपड़े आदिसे सजकर मेरे पास लाओ।** यह वाक्य सुनकर यद्यपि रानीको फिरसे संदेह हुआ, परन्तु वारिषेणके कहे अनुसार उन बत्तीसों स्त्रियोंको ले आई और वे सबकी सब मुनिको नमस्कार करके खड़ी हो गईं। तब वारिषेणने पुष्पडालसे कहा, हे मुनि!

जिस धनके लिये तुम मुनिपद छोड़कर जाना चाहते हो, सो उससे कई गुणा राज्य तुम लेओ, और आपका चित्त जो एक कानी स्त्रीमें भटकता है सो ये बहुत ही रूपवान बत्तीस स्त्रियां ग्रहण करो। दस बीस बरस भोगकर देख लो कि इनमें सुख है या मुनिमार्गमें सुख है।

मुनिराजके ये वचन सुनकर पुष्पडाल बहुत लज्जित हुआ और कहने लगा कि, हे गुरु! आप धन्य हो!! आपने ऐसी उत्तम सामग्री छोड़कर जिनदीक्षा ली है जिससे आगे मेरी कानी स्त्री कुछ गिनतीमें नहीं है। आपके इस कार्यसे अब मेरा मोह मिट गया, अब मुझे सच्चा वैराग्य उपजा है। मेरी मूर्खतापर क्षमा करो और प्रायश्चित्त देकर सच्चे मार्गमें लगाओ। यह सुनकर वारिषेण मुनि बहुत प्रसन्न हुए और शास्त्रमें कहे अनुसार उसे दंड देकर फिरसे दीक्षा दी। अंतमें उन दोनोंने ध्यानके बलसे आठों कर्म नष्ट करके सिद्ध पद प्राप्त किया।

हम सबको उचित है कि यदि किसी मनुष्यको धर्मसे भ्रष्ट होता देखें, अर्थात् अपने जैनी भाईको ईसाई मुसलमान आदि होते देखें तो जैसे बने तैसे उसे जैन धर्ममें पक्का कर दें, अथवा किसी धर्मात्माके पास पूंजी रोजगार आदि न हो तो शक्तिभर सहायता करें।

---

१ जब किसी मुनि या गृहस्थसे कोई भूल हो जाती है तो उसकी शुद्धिके लिये दंड देकर फिरसे धर्ममें लगाते हैं उसे प्रायश्चित्त कहते हैं।

(७) विष्णुकुमार मुनिकी कथा।

उज्जैन नगरमें राजा श्रीवर्मा राज्य करते थे। जैन धर्म-पर उनका बड़ा विश्वास था। उनकी सभामें चार मन्त्री थे, वे चारों ही मिथ्याती थे। उनके नाम—बलि, बृहस्पति, प्रहलाद और नमुचि थे।

एक दिन महाराज अकंपनाचार्य अपने सातसौ मुनि शिष्यों समेत उज्जैनके बगीचेमें आकर ठहरे। उन्होंने अवधिज्ञानसे जान लिया था कि, यहांके राज्यमंत्री मिथ्याती हैं इसलिये अपनी शिष्य मंडलीसे यह कह रक्खा था कि सब साधु चुपचाप रहें, कोई आवे तो बिलकुल बातचीत न करें। गुरुजीकी यह आज्ञा सुनकर सब मुनि, धर्मध्यानमें लीन हो गये।

मुनि समूह आया जानकर बस्तीके लोग उनकी पूजा वंदनाको जाने लगे। राजा उन्हें जाते देखकर विचार करते थे, कि, ये लोग कहां जाते हैं? इतनेमें बागका माली सब ऋतुओंके फूल लेकर आया और राजासे नमस्कार करके कहने लगा कि बगीचेमें सातसौ मुनिराज आये हैं जिससे बागके सब वृक्षोंमें फलफूल लग गये हैं और बड़ी शोभा हो रही है। यह सुनकर राजाने कहा कि हम भी मुनि महाराजोंके दर्शन करेंगे। परन्तु चारों मंत्री जैन मुनियोंकी निन्दा करने लगे। पर राजाने उनकी एक न मानी और अपने रनवास समेत बड़े सानवानसे साधुवन्दनाको निकले, तब तो बेचार चारों मन्त्रियोंको भी राजाके साथ जाना पड़ा।

राजाने वहां पहुंचकर उन वीतरागी मुनियोंकी भक्ति सहित वन्दना की, परन्तु किसी मुनिने उन्हें आशीर्वाद नहीं दिया। जब राजा लौट पड़े तब साथके मंत्री उनसे कहने लगे कि ये मुनि मूर्ख हैं इसी कारण कुछ नहीं बोलते हैं, इनको कुछ ज्ञान होता तो अवश्य ही बातचीत करते। ऐसी निन्दा करते हुए जारहे थे, और शहरसे **श्रुतसागर** मुनि भोजन करके आरहे थे। उन्हें आते देखकर मंत्रियोंने राजासे कहा, देखिये। उन मुनियोंमेंका यह एक बैल कैसा फूला हुआ आरहा है।

श्रुतसागरको मौन धारण करनेकी गुरु आज्ञा मालूम नहीं थी। वे गुरुकी आज्ञा होनेके पहिले ही शहरमें चले गये थे, इसलिये वे ब्राह्मणोंसे शास्त्रार्थ करनेको जम गये और चारों ब्राह्मणोंको हरा दिया। जब श्रुतसागर मुनि अपने गुरुके पास आये और वहांका हाल सुनाया, तब गुरुजी कहने लगे कि तुमने यह भला नहीं किया। अब तुम शास्त्रार्थके स्थानपर ही रात्रिभर खड़े रहो, नहीं तो आज सब साधुओंपर विपदा आना संभव है।

गुरुजीकी ऐसी आज्ञा होनेपर श्रुतसागर मुनिने उन्हें नमस्कार करके वहांसे चल दिया और उसी स्थानपर जहां कि वाद हुआ था खड़े होकर ध्यानमें लीन हो गये।

इन मंत्रियोंको राजाके साम्हने हारनेसे बड़ा क्रोध आया और उन्होंने सब मुनियोंके मार डालनेकी तैयारी की। रातको वे चारों, हथियार लेकर आये और रास्तेमें श्रुतसागर मुनिको खड़े देखकर कहने लगे कि, इसीने हमारा अपमान किया है सो पहिले इसीका काम तमाम करना चाहिये, इसलिये चारोंने एकदम

मुनि महाराजको तलवार मारना चाहीं। लेकिन उस नगरके देवताने उन चारोंहीको कील दिया, और वे जैसेके वैसे खड़े रह गये। जब सवेरे राजाको यह हाल मालूम हुआ तब वे वहां गये और उन चारोंकी बहुत बुरी दशा करके देशसे निकाल दिया।

वे चारों पापी, भटकते भटकते हस्तिनापुरमें पहुँचे। वहांके राजा पद्मके मन्त्री बनकर रहने लगे। राजा पद्मके पिता महापद्म और छोटे भाई विष्णुकुमार मुनि हो गये थे, इससे कुंभक नगरका राजा सिंहबल उपद्रव करने लगा था। राजा पद्मको उसकी बड़ी चिंता रहती थी और उस चिन्ताके कारण वे बहुत दुबले रहते थे। जब बालिमंत्रीने उनसे निर्बलताका कारण पूंछा तब उन्होंने सिंहबलका हाल सुनाया। उसे सुनकर और राजासे आज्ञा लेकर वे चारों मंत्री कुंभक नगरको गये और छलसे सिंहबलको पकड़कर हस्तनापुर ले आये। सिंहबलने राजा पद्मकी शरणमें आकर उनसे क्षमा मांगी, तब उन्हें बहुत संतोष हुआ और सिंहबलको माफ कर दिया।

राजा पद्मने बलि आदिकी होशियारीपर प्रसन्न होकर कहा कि, तुम्हें जो कुछ इनाम मांगना हो सो मांग लो। यह सुनकर उन्होंने कहा कि, हे महाराज! हम आपकी देनगी अभी नहीं चाहते हैं। जब आवश्यक्ता होगी तब मांग लेंगे।

कुछ दिनों बाद वे ही अकंपनाचार्य जहां तहां उपदेश करते करते हस्तनापुरमें पहुंचे। सातसौ मुनि भी उनके साथ थे। उनका विचार था कि बरसातके दिनोंमें यहीं रहेंगे। जब यह बात बलि आदिको मालूम हुई तब वे

बहुत घबराये और सोचने लगे कि, राजा पद्म जैनी हैं, यदि उन्हें उज्जैनीका हाल मालूम हो जावेगा तो हम फिर विपदामें पड़ेंगे, इसलिये उन चारोंने राजा पद्मके पास जाकर कहा कि, हे महा-राज ! जो आपने हमें इनाम देनेको कहा था सो अब काम आ पड़ा है, कृपा करके आप हमें सात दिनके लिये अपना राज्य दे दीजिये। **राजा पद्मने सात दिनके लिये मंत्रियोंको राजा बना दिया** और वे रनवासमें रहने लगे।

वे चारों मंत्री राज्य पाकर मुनियोंके नाशका उपाय सोचने लगे। उन्होंने मुनियोंके आसपास एक वाड़ा (कम्पाऊंड) बनवाया। वाड़ेके भीतर बहुतसी लकड़ियां जलवा कर खूब धुआं कराया, ब्राह्मणों द्वारा पशुवध पूजा शुरू कराई और पशुओंके बदले मुनियोंको हवनमें जला देनेकी आज्ञा दी। बहुतसी गली, सड़ी, अशुद्ध, दुर्गंधित और जूंठी वस्तुएं मुनियोंके ऊपर डलवाई, ईंट, पत्थर कंडे आदि मरवाये और भांति भांतिके कष्ट उन मुनियोंको दिये; परन्तु धन्य है ! शत्रु मित्रपर समता रखनेवाले मुनियोंने धैर्य नहीं छोड़ा। उन्होंने आखड़ी ले ली कि जबतक यह संकट नहीं टलेगा तब तक अन्न जलका त्याग है। " बस ! ध्यानमें लीन होकर आत्माके गुणोंका चिंतवन करने लगे।"

वह श्रावण सुदी पूर्णमासीका दिन था इससे आकाशमें श्रवण नक्षत्रका उदय हुआ था। साधुओंके साथ ऐसा अन्याय देखकर वह नक्षत्र कांपने लगा। उसे कांपता देखकर मिथिलापुरीमें **भ्राजिष्णु** क्षुल्लकने ज्योतिष विद्यासे मालूम किया कि, कहीं मुनियोंके ऊपर महा उपसर्ग हो रहा है, इसलिये उन्होंने यह बात

विष्णुसूरि गुरुसे कही। तब उन्होंने अपने ज्ञानबलसे कहा कि श्री अकंपनाचार्यके संघपर बलि राजाने बडा उपद्रव किया है, और पुष्पदंत विद्याधरको बुलाके कहा कि धरणीभूषण पर्वतपर जाकर विक्रियाऋद्धि धारक विष्णुकुमार मुनिसे यह बात कहो[1]। पुष्पदंत तुरंत ही उनके पास गया और सब हाल कह सुनाया। महाराज विष्णुकुमारको मालूम ही न था कि मुझे विक्रियाऋद्धि उपजी है, इसलिये उन्होंने परीक्षाके लिये अपना एक हाथ बढ़ाया तो वह मानुषोत्तर पहाड़ तक बढ़ता ही गया। वे मुनि शीघ्र ही हाथ समेटकर हस्तिनापुरको गये और राजा पद्मके पास जाकर कहा कि, भैया! तुमने यह अच्छा नहीं किया जिससे मुनियोंको ऐसा कष्ट पहुंचा। अपने वंशमें अनेक राजा हो गये हैं जो धर्मका पालन करके स्वर्ग मोक्षको गये हैं, परंतु तुम कुलकलंक उपजे हो। अब शीघ्र ही मुनियोंका संकट दूर करो।

राजाने हाथ जोडकर कहा—महाराज, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मैं बलिको वचन देकर लाचार हो गया हूं, अब मेरे वशकी बात नहीं है। आप समर्थ हैं, मुनियोंकी विपत्ति टालनेका उचित उपाय करें। तब तो विष्णुकुमार मुनिने वहांसे चल दिया और तुरंत ही एक ठिंगने[2] ब्राह्मणका रूप धरके वेद पढ़ते हुए यज्ञमें पहुंचे। बलि उन्हें देखकर

---

१. किसी किसी ग्रंथमें लेख है कि श्री सारचंद मुनिने अवधि ज्ञानसे जाना और पुष्पदन्त क्षुल्लकको श्री विष्णुकुमारके पास भेजा।
२ छोटा शरीर।

बहुत आनंदित हुआ और कहने लगा कि, हे महाराज ! इस समय जो इच्छा हो दानमें मांग लीजिये। मुनिने कहा, हे राजा ! तीन कदम धरती देओ। राजाने कहा और ज्यादा मांगो। मुनिने उत्तर दिया कि, इतनी ही बस है। तब बलिने तीन कदम जमीन अर्पण करके पानी छोड़ दिया। फिर क्या था, मुनिने एक कदम मेरूपर रक्खा, दूसरा कदम मानुषोत्तरपर रक्खा और तीसरा कदम रखनेको मनुष्यलोकमें जगह न रही। तब मुनिने, बलिसे कहा, हे बलि ! अब तीसरा कदम कहां रक्खूं ? "वचन भंग न करो"। ऐसा कहके बलिकी पीठपर पांव रख दिया। बेचारा बलि कुछ भी न बोल सका।

जब विष्णुकुमार मुनिने अपना शरीर बढ़ाया तब हलचल मच गई। पृथ्वी कांपने लगी। देवता भयभीत होकर आये और प्रार्थना करने लगे कि क्षमा करो ! क्षमा करो ! तब मुनिने पांव उठा लिया। राजा पद्म भी दौड़ा आया और देवताओं तथा सब मनुष्योंने मुनिकी पूजा की और श्रावकोंने सातसौ मुनियोंकी औषधि मिश्रित आहार आदिसे वैयावृत्ति की। बलि आदि ब्राह्मणोंका जैन धर्मपर सच्चा विश्वास हो गया और वे पक्के जैनी हो गये। विष्णुकुमारने प्रायश्चित्त लेकर घोर तप किया जिसके बलसे केवलज्ञान उपजाकर सिद्ध हो गये।

श्रावण सुदी पूर्नोको मुनियोंके धर्मकी रक्षा हुई थी, इस लिये तब हीसे श्रावन सुदी पूर्नोको रक्षाबन्धनका पर्व माननेकी परिपाटी है। हम सबको चाहिये कि, धर्मात्मा जीवोंसे प्रीति रक्खें, उनके ऊपर कोई दुःख आपड़े तो उसे दूर करें, और

श्रावण सुदी पूनोंके दिन रक्षाबन्धन, विष्णुकुमार मुनिकी कथा और कई पुन्यके काम बड़े उत्साहसे किया करें।

देखो! विष्णुकुमार मुनि भी साधुओंका दुःख दूर करनेको दौड़े गये थे। इसी प्रकार हम सबको उचित है कि अपने साधर्मी भाइयों पर प्रेम रक्खें और उन्हें सदा सहायता दिया करें।

---

(८) वज्रकुमार मुनिकी कथा।

हस्तनागपुरमें राजा बलि बड़े ही प्रजापालक थे। उनके पुत्रका नाम **सोमदत्त** था। वह बड़ा विद्वान् और रूपवान् था। एक दिन सोमदत्त अपने मामाके यहां अहक्षत्रपुरको गया। उसने मामासे कहा कि, मेरी इच्छा यहांके राजासे भेंट करनेकी है, परन्तु उसके मामाने राजासे भेंट नहीं कराई। यह बात सोमदत्तको बुरी लगी और वह स्वयं ही महाराजके दर्बारमें गया और अपनी पंडिताई दिखाकर राजमंत्री बन गया। सोमदत्तका मामा भी उसकी बुद्धिमानी देख प्रसन्न हुआ और अपनी बेटी **यज्ञदत्ताका** विवाह उसके साथ करदिया।

कुछ दिनोंके बाद यज्ञदत्ताको गर्भ रहा और बरसातके दिनोंमें उसको आम खानेकी इच्छा हुई। वह आमोंकी ऋतु न थी तौ भी उद्योगशील सोमदत्त आम ढूंड़नेको बगीचेमें गया। वहां जाकर देखता क्या है कि, बगीचेभरमें केवल आमका एक वृक्ष फला हुआ है और उसके नीचे मुनिराज बैठे हुए हैं। बुद्धिमान् सोमदत्तने समझ लिया कि, यह मुनिका ही प्रभाव है। उसने मुनिराजको नमस्कार करके आम तोड़ लिये।

सोमदत्तने आम तो अपनी स्त्रीके पास पहुंचा दिये और आप मुनिराजके पास बैठ गया। वह हाथ जोड़कर पूंछने लगा कि, हे महाराज! इस संसारमें सार क्या है? मुनिने उसे श्रावक और साधुका धर्म सुनाया। उसको सुनकर सोमदत्तको बड़ा वैराग्य उपजा और मुनि दीक्षा ले ली। सोमदत्त मुनिने गुरुके पास खूब विद्या पढ़ ली और नाभिगिर पर्वतपर आकर महा तप करने लगे।

यहां यज्ञदत्तको पुत्र हुआ। पर जब उसने अपने पतिके समाचार सुने तो वह घरके लोगोंको साथ लेकर सोमदत्त मुनिके पास गई और क्रोधित होके कहने लगी कि, अरे पापी! यदि तुझे ऐसा करना था तो मेरे साथ विवाह ही क्यों किया? बता अब मैं किसके पास रहूं? ले! इस बच्चेको तू ही पाल!! ऐसा कहके मुनिके पास बालकको डालकर चली आई।

सोमदत्त मुनि प्रचण्ड तप करते रहे, इन्हें पुत्रसे कुछ मोह तो था ही नहीं। परन्तु पुत्रके भाग्यसे दिवाकरदेव नामका एक विद्याधर तीर्थयात्राके लिये वहां जा पहुंचा। साथमें उनकी स्त्री जयश्री भी थी। दिवाकरदेवने उस बालकको उठा लिया और अपनी स्त्रीकी गोदमें दे दिया। स्त्री उस बच्चेको पाकर बहुत प्रसन्न हुई। बालकके हाथमें वज्र था इससे उसका नाम वज्रकुमार रक्खा।

दिवाकरका साला विमलवाहन कनकपुरीका राजा था। सो उस बालक वज्रकुमारने अपने मामा विमलवाहनके यहां रहकर विद्याभ्यास किया। एक दिन वज्रकुमार ह्रीमन्त पर्वतकी शोभा देखने गये। वहां एक विद्याधरकी पुत्री पवनवेगा विद्या साध

रही थी। विद्या साधते २ एक कांटा उड़कर पवनवेगाकी आंखमें आ पड़ा, जिससे उसका चित्त डगमगाने लगा। जब वज्रकुमारने पवनवेगाको ध्यानसे विचलित देखा तो उसकी आंखका कांटा निकाल दिया। पवनवेगाने शान्तचित्त होकर मंत्र साधन किया और विद्या भी सिद्ध हो गई।

पवनवेगाने यह सब उपकार वज्रकुमारका ही समझा और उनके पास जाकर कहने लगी कि, आपने मेरे ऊपर बड़ी ही कृपा की है। मैं आपके उपकारका बदला कुछ नहीं चुका सकती हूं, पर अपना जीवन आपको अर्पण कर आपकी दासी बनना चाहती हूं। वज्रकुमारने पवनवेगाके साथ विवाह करना स्वीकार किया और दोनों अपने अपने घर गये। थोड़े दिनोंके बाद पवनवेगाका व्याह उसके पिताने वज्रकुमारके साथ कर दिया।

एक दिन वज्रकुमारको मालूम हुआ कि, मेरे पिता दिवाकरदेवको उनके छोटेभाई पुरन्दरदेवने लड़ाईमें हरा दिया था और उनको राज्यसे निकाल दिया था। इस बातपर वज्रकुमारको बड़ा क्रोध आया। उसने चढ़ाई कर दी और लड़ाईमें पुरन्दरदेवको बांध लिया तथा दिवाकरदेवका हारा हुआ राज्य उसे जीत दिया। इस लड़ाईके जीतनेसे वज्रकुमारका नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया और बड़े बड़े राजा उससे डरने लगे।

कुछ कालमें दिवाकरदेवकी स्त्री जयश्रीको भी पुत्र उत्पन्न हुआ और वह, इस लाये हुए बालकपर डाह करने लगी। वह सोचने लगी कि, वज्रकुमारके कारण मेरे पुत्रको राज्य नहीं

मिलेगा। यदि मेरे कहनेसे मेरे पति मेरे पुत्रको राज्य देवेंगे तो वज्रकुमार नहीं देने देगा।

एक दिन जयश्री किसीसे कह रही थी कि वज्रकुमार कहां तो पैदा हुआ और कहां मेरे जीका कांटा बन रहा है। यह बात वज्रकुमारके कानोंमें पड़ गई और उसे बड़ा संदेह हुआ। वह तुरंत ही दिवाकरदेवके पास गया और कहने लगा कि मेरे सच्चे पिता तो आप ही हैं। क्योंकि आपहीने मेरा पालन किया है, पर सच बताइये मैं किसका पुत्र हूं? और यहां कैसे आया हूं? दिवाकर-देवने पहिले तो असली बात छिपाई, पर वज्रकुमारके बारबार पूछने पर दिवाकरदेवने ज्योंका त्यों हाल कह सुनाया। वज्रकुमारका चित्त, अपने जीवनका हाल सुनकर बहुत विरक्त हो गया। एक दिन वह सोमनाथ मुनिकी वंदनाको गया। और नमस्कार कर जिन दीक्षा देनेकी विनती करने लगा। दिवाकरदेवने बहुत समझाया, पर उन्होंने न माना। सब कपड़े गहने आदि फेंककर जिन दीक्षा ले ली और वे खूब तप करने लगे। अबतक वज्रकुमारके जन्म, विद्या विवाह और दीक्षा आदिका हाल लिखा है, अब उनके प्रभावना गुणकी वार्ता लिखते हैं।

मथुरा नगरमें राजा **पूतगंध** राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम **उर्विला** था। वह बड़ी धर्मात्मा थी। दूसरी रानीका नाम **बुद्धदासी** था। वह बौद्ध धर्मका पालन करती थी और वह ही राजाकी पट्टरानी थी। बुद्धदासीके पिताने विवा-हके समय राजासे ठहराव किया था कि, "यदि आप बौद्ध धर्म

स्वीकार करें तो मैं अपनी बेटी देनेको तत्पर हूं, और राजाने बुद्धदासीके रूपसे मोहित होकर मंजूर भी कर लिया था।

अष्टान्हिकाके दिनोंमें रानी उर्विलाने प्रति वर्षकी नाईं उत्सव किया। जब रथ निकालनेका समय आया तब छत्र, चमर, पुष्प आदिसे रथकों खूब सजाया और जिन भगवान्‌की प्रतिमाजी-को विराजमान करके निकालना चाहा। परन्तु बुद्धदासीने उर्विला रानीका रथ रुकवा दिया और कहने लगी कि, मेरा रथ पहिले निकलेगा। राजाने भी बुद्ध दासीका कहना मान लिया, इससे उर्विला रानीको बहुत दुःख हुआ। उसने सौगंध ले ली कि, जब जिनेश्वरका रथ आगे निकलेगा तब ही भोजन करूंगी। और फिर वहां गई जहां वज्रकुमार मुनि तप कर रहे थे। उर्विलाने रथ आगे निकलनेमें विघ्न आनेका हाल उनसे कहा। उस समय दिवाकरदेव आदि बहुतसे विद्याधर साधु वन्दनाको आये हुए थे। वज्रकुमार मुनिने विद्याधरोंसे कहा कि, आप लोग समर्थ हैं, जैन धर्मपर यह बड़ा संकट आपड़ा है सो उसे दूर करें।

वज्रकुमार मुनिके कहनेसे सब विद्याधर मथुरामें आये और बुद्धदासी व उसके नोकरोंको बहुत समझाया, पर वे न माने तो उन सबको मार भगाया और उर्विला रानीका रथ आनंदके साथ निकलवा दिया। इससे जैनधर्मका सबपर बड़ा प्रभाव पड़ा, तब राजा और रानीने भी सच्चे मनसे जैनधर्म स्वीकार किया।

वज्रकुमार मुनिके समान हम सबको धर्मकी प्रभावना बढ़ाना चाहिये और दान, पूजा, शील, संयम, रथोत्सव, धर्मोप-देश आदिके द्वारा जैनधर्मकी उन्नति करना चाहिये।

छंद गीता, मात्रा २८।

अंजन निरंजन हुए उनने, नहीं शंका चित धरी।
बाई अनन्तमती सतीने, विषय आशा परिहरी॥
सज्जन उद्दायन नृपतिवरने, ग्लानि जीती भावसे।
सत असतका किया निर्णय, रेवतीने चावसे॥ १॥
जिनभक्तिजीने चोरका, वह महा दूषण ढँक दिया।
जय वारिषेण मुनीश, मुनिके-चपल चितको थिर किया॥
मुविष्णुकुमार कृपालुने मुनि-संघकी रक्षा करी।
जय! वज्र मुनि जयवंत तुमसे, धर्म महिमा विस्तरी॥२॥

सम्यक् चारित्रकी चर्चा।

जीवकी अशुभ परणतिको **पाप** कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, ये पांच पाप प्रसिद्ध हैं। इन पांच पापोंका त्याग किये विना आत्मस्वभावमें थिरतारूप **निश्चय चारित्र** नहीं हो सक्ता। इससे पंच पापोंका त्याग निश्चय चारित्रका कारण है, और इसीलिये पंच पापोंके त्यागको व्यवहारमें चारित्र कहते हैं।

चारित्र धारण करनेकी सम्यक्दृष्टि[1] जीवोंको बड़ी रुचि रहती है। वे समय पाकर पांचों पापोंको सर्वथा त्याग कर कर **मुनि** हो जाते हैं, और उनके ऐसे त्यागको **महाव्रत** कहते हैं। परंतु कोई कोई सज्जन, अपनी निर्बलताके कारण पंच पापोंको यदि बिलकुल न त्याग सकें तो उन्हें थोड़े थोड़े करके त्यागते हैं। उनके ऐसे त्यागको अणुव्रत कहते हैं और उन **अणुव्रत** धारण करनेवालोंको **श्रावक** कहते हैं।

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारजीमें कहा है कि पांच अणुव्रतोंमेंसे (१) हिंसा त्याग अणुव्रतमें **यमपाल चांडाल** (२) असत्य त्याग अणुव्रतमें **धनदेव** (३) चोरी त्याग अणुव्रतमें **वारिषेण** (४) कुशील त्याग अणुव्रतमें **नीलीबाई** (५) परिग्रहप्रमाण अणुव्रतमें **जयकुमार** बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। और पांच पापोंमेंसे (१) हिंसामें **धनश्री** (२) झूठमें **सत्यघोष** (३) चोरीमें एक **पाखंडी साधु** (४) कुशीलमें एक **थानेदार**

---

१ आठों अंगोंका समुदायरूप सम्यक दर्शन ग्रहण करनेवाले।

(५) परिग्रहकी तृष्णामें श्मश्रुनवनीत बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। सो इन पांचों व्रतधारियों और पांचों पापियोंकी कहांनीं बांचकर, पांच महाव्रत या अणुव्रत ग्रहण करना चाहिये और पांचों पापोंका त्याग करना चाहिये उनमेंसे यमपाल चांडालकी कहानी इस प्रकार है।

---

(१) यमपाल चांडालकी कथा।

काशी नगरीमें राजा पाकशासन राज्य करते थे। एक समय उनके राज्यमें हैजेकी बीमारी फैल गई थी और उससे उनकी प्रजा अत्यन्त दुखी हो रही थी, इसलिये राजाने शहरमें मनाहि करवादि कि, अष्टान्हिकाके दिनोंमें कोई जीव हिंसा न करें[१]।

उस नगरमें एक सेठ रहता था। उसके पुत्रका नाम **धर्म** था। वह नामका तो धर्म था पर बड़ा हत्यारा था। मांस खानेकी तो उसे इतनी चाट लग गई थी कि अष्टान्हिकाके दिनों भी उससे न रहा गया। वह राजाके ही बगीचेमें गया और चोरीसे एक मेंढा मार लिया। उस मेंढाका मांस तो वह कच्चा ही खा गया और उसकी हड्डियां एक गड्ढेमें गाड़के चला आया। जब मेंढेका खोज किया गया तो वह न मिला। और जब यह बात राजा तक पहुंची, तब राजाने गुप्त रीतिसे पता लगानेके लिये सिपाहियोंको भेजा।

---

१ हिंसाका त्याग और दया, शुभ परणति है। शुभ परणतिसे पुन्यकर्मका बंध होता है और रोग असाता आदि कर्मोंका रस सूख जाता है।

बगीचेके मालीने धर्म सेठका वह हाल देख लिया था और रातको अपनी स्त्रीको सुना रहा था कि इतनेमें एक सिपाही वहांसे निकला और उसने भी सुन लिया। जब सिपाहिने राजाको मालूम कराया कि, धर्म सेठने मेढेकी हत्या की है तब राजाने कोतवालको बुलाकर कहा कि उस पापीने प्रथम तो जीवहत्या की, दूसरे आज्ञा भंग की, इसलिये उसे फांसी लगवा दो। राजाकी आज्ञा सुनकर धर्म तुरंत पकड़ा गया। उसी दिन चौदस थी तो भी वह फांसीकी जगहपर लाया गया और यमपाल चांडालको बुलानेके लिये सिपाही भेजे।

यमपाल था तो चांडाल पर उसकी दयाधर्ममें बड़ी रुचि थी। उसने मुनिके पास आकड़ी ली थी कि, चतुर्दशीके दिन मैं जीव हिंसा नहीं करूंगा। जब उसने राजाके सिपाहियोंको आते देखा तो वह ताड़ गया कि, सिपाही मुझे धर्म सेठकी फांसी लगानेके लिये बुलानेको आ रहे हैं। इसलिये वह घरमें छिप रहा और अपनी स्त्रीसे कह दिया कि, यदि सिपाही मुझे बुलावें तो कह देना कि, कहीं दूसरे गांवको गये हैं। जब सिपाही यमपालके घरपर पहुंचे और यमपालको पुकारने लगे, तो स्त्रीने वैसा ही कह दिया जैसा कि यमपालने समझा दिया था। उसे सुनकर सिपाही पछता करके कहने लगे कि, यमपाल बड़ा ही भाग्यहीन है, आज धर्म सेठकी फांसी होना है और आज ही वह घरपर नहीं है। आज यमपाल घरपर होता तो सेठके सब गहने और कपड़े उसे मिलते।

सिपाहियोंके वचन सुनते ही चांडालनी बड़ी द्विविधामें पड़ ई। वह सोचने लगी कि, यदि पतिको बताये देती हूं तो पतिकी

आज्ञा भंग होती है और जो नहीं बतलाती हूं तो बहुतसा धन मारा जाता है।

स्त्रियोंके चित्तमें स्वभावसे ही कपट रहता है। फिर जब उसे धनका लोभ लग गया तो वह चांडालनी अपने पतिको पकड़वाये विना क्यों कर माननेवाली थी। वह हाथसे पतिकी ओर इशारा करती गई और मुंहसे कहती गई कि, वे तो गांवको गये हैं। फिर क्या था सिपाही चांडालके घरमें घुस गये और उसे पकड़ लिया। पर यमपालने कह दिया कि आज चतुर्दशीका दिन है, मैं जीवहिंसा करनेवाला नहीं हूं। अंतमें वे उसे राजाके पास ले गये।

महाराज, धर्म सेठके कर्मसे क्रोधित तो थे ही, और चांडालका उत्तर सुनकर और भी लाल हो गये। उन्होंने आज्ञा दी कि इन दोनों ही को गहरे तालावमें डुबा दो, जिससे मगरमच्छ आदि खा जावे।

राजाकी आज्ञासे कोतवालने धर्म सेठ और यमपालको गहरे तालावमें धकेल दिया। पापी सेठको तो मगरमच्छोंने उसी समय खा लिया, पर यमपालके पुन्यके प्रभावसे उस तालावके जल देवताने उसकी रक्षा की। उसे सोनेके सिंघासनपर बैठाकर उसका अभिषेक पूजन किया, सुन्दर कपडे तथा गहने पहराये, और गाजे बाजेसे बड़ी स्तुति की। बस्तीके सब लोग धन्य धन्य कहने लगे। जब राजाको यह हाल मालूम हुआ, तो वह बहुत पछताया। वह तुरन्त ही यमपालके पास दौडा गया और अपनी भूल क्षमा कराई।

सच है, धर्मके प्रभावसे क्या नहीं होता ? हम सबको उचित

है कि यमपालके समान अहिंसा व्रतकी पालना करें और प्राण जाते भी व्रत भंग न करें ।

---

(१०) सत्यवादी धनदेवकी कहानी ।

पूर्व विदेह क्षेत्रके पुष्कलवती देशमें पुंडरीकनी नगरी थी। वहां धनदेव और जिनदेव दो व्यापारी रहते थे । उनमेंसे धनदेव तो बड़ा ईमानदार और सत्यवादी था, पर जिनदेव बड़ा झूठा था । एक दिन उन्होंने ऐसा ठहराव किया कि, दोनों मिलकर परदेशमें व्यापार करें; जो लाभ होवेगा उसे आधा आधा बांट लेवेंगे।

जब वे दोनों विदेशको गये और बहुतसा धन कम कर लाये, तो जिनदेवका चित्त चलायमान हुआ और धनदेवसे कहने लगा कि, मैंने तुम्हें व्यापारमें भागीदार नहीं बनाया था। मैंने तो यह कह दिया था कि तुम्हारे श्रमके अनुसार तुम्हें थोड़ासा धन दे देऊंगा। जब जिनदेव, धनदेवको आधा हिस्सा न देकर बहुत ही थोड़ा धन देने लगा तो धनदेवने नहीं लिया और बस्तीके महाजनोंके पास यह झगड़ा निबटानेका उपाय किया, पर जिनदेवने पंचोंकी बात न मानी।

अन्तमें धनदेवने यह झगड़ा तय करनेको राजासे विनती की। दोनोंका ठहराव मुख जबानी था, कुछ लिखा पढ़ी नहीं थी, इसलिये इन दोनोंका न्याय करनेमें राजाको बहुत कठिनता दिखने लगी। राजाने बहुत विचार करते करते उत्तर दिया कि, इन दोनोंके हाथोंपर जलते हुए अंगारे रक्खो, अंगारे रखनेपे

जिसको दुःख होवेगा वह झूठा समझा जायगा। राजाकी यह आज्ञा सुनकर जिनदेव बड़ी चिन्तामें पड़ा। वह सोचने लगा कि, मैंने धनदेवसे आधा भाग देनेको कह दिया था, और अब मेटता हूं, सो मेरे हाथ अवश्य जलेंगे, परन्तु धनदेवके मुखपर प्रसन्नता ही झलकती रही। वह सोचता था कि मेरा जो ठहराव था वही मैं मांगता हूं, सो भगवान्‌की कृपासे अवश्य ही मेरी जीत होवेगी, अर्थात् मैं नहीं जलूंगा।

उन दोनोंके चेहरे देखकर राजाकी समझमें आचुका था कि जिनदेव झूठा हैं। पर राजाने इतने ही में संतोष नहीं कर लिया, उसने जलते हुए अंगारे मँगवाकर दोनोंके हाथोंपर रखवा दिये, तो जिनदेव जो झूठा था वह आगका तेज नहीं सह सका—उसने तुरंत ही अंगारे फेंक दिये; परन्तु धनदेव बड़े आनन्दसे अंगारे लिये रहा, उसका मन बिलकुल मलीन नहीं हुआ। यह देखकर राजा तथा सभाके लोग धनदेवकी सचाईकी बड़ी बड़ाई करने लगे और राजाने प्रसन्न होकर धनदेव ही को सब धन दिला दिया। इस पवित्र परीक्षामें, धनदेवके पास होनेका हाल सुनकर बस्तीके लोगोंको बड़ा अचरज हुआ और उस दिनसे वे सब लोग धनदेवको एक महात्मा समझने लगे।

ठीक है, सत्यकी सदैव जय होती है। इसलिये हम सबको उचित है कि, लेनदेन आदिका व्यवहार सचाईसे किया करें। कोई कोई लोग कहने लगते हैं कि, झूठ बोले बिना काम नहीं चलता, अब सत्यका समय नहीं है, झूठ बोलनेसे ही पैसे पैदा होते हैं, उन्हें धनदेवकी यह कहानी बांचना चाहिये।

(११) वारिषेणकुमारकी कहानी।

सम्यग्दर्शनके छठवें अंग, स्थितिकरणकी कहानीमें लिख आये हैं कि, पूर्वकालमें राजगृह नगरके राजा **श्रेणिक** थे, उनके कई पुत्रोंमेंसे एकका नाम **वारिषेण** था।

उसी राजगृही नगरीमें **विद्युत्** चोर रहता था। उसकी प्रीति **मगध सुन्दरी** वेश्यासे थी। चौदसकी रात्रिको जब विद्युत् चोर वेश्याके पास गया तो उसने कहा कि, **श्रीकीर्ति** सेठके यहां जो रत्नहार है वह मुझे ला दीजिए। वेश्याके कहनेसे विद्युत चोर रत्नहार तो चुरालाया, परन्तु शहरके कोतवालने चोरके पास चमकता हुआ पदार्थ देखकर उसका पीछा किया। चोर भी मगध सुन्दरीके पास न जाकर भागते भागते मुर्दखानेमें पहुंचा। वहां वारिषेणकुमार खड़े हुए सामायक कर रहे थे, सो उनके पास रत्नहार रखके वह चोर कहीं छिप गया।

जब कोतवाल वारिषेणके पास पहुंचा और उनके साम्हने रत्नहार रक्खा देखा तो उसे संदेह हुआ कि, वारिषेण ही यह हार चुरा लाये हैं और सामायिकका पाखंड करके खड़े हो गये हैं। अंतमें महाराज श्रेणिकको इस बातकी सूचना की गई तो उन्होंने कोतवाल आदिके कहनेपर भरोसा करके वारिषेणका मस्तक काट लेनेकी आज्ञा दे दी।

जब चांडाल, हाथमें तलवार लेकर श्री वारिषेणकुमारके गलेपर चलाने लगा, तब उनके पुण्यके प्रभावसे वह तलवार पुष्पमाला होके उनके गलेमें पड़ गई। यह अद्भुत घटना देखकर देवता लोग जय जय शब्द बोलते हुए पुष्पोंकी वर्षा

करने लगे। "वारिषेणने न तो रत्नहार पासमें रखनेपर अपना ध्यान छोड़ा था, न अब भी छोड़ा"।

जब श्रेणिक महाराजको यह समाचार मिले तो अपनी मूर्खतापर पछताने लगे। वे वारिषेणके पास गये और अपने अपराधकी क्षमा मांगी। राजा श्रेणिकने श्री वारिषेणकुमारसे घर-पर चलनेको बार बार कहा, परन्तु उन्होंने संसारका ऐसा चरित्र देखकर जिन दीक्षा लेली और महा तप करके मोक्षको पधारे।

सत्य है, पुण्यवान् मनुष्यपर कितनी ही विपत्ति क्यों न आवे वह क्षणभरमें हट जाती हैं। इसलिये हम सबको उचित है कि अचौर्य्य व्रत ग्रहण करके पुण्यका संचय करें।

---

(१२) श्रीमती नीलीबाईकी कथा।

भृगुकच्छ नगरमें एक सेठ रहते थे, उनका नाम जिन-दत्त था। उनकी इकलौती कन्याका नाम नीलीबाई था। बाई नीली बहुत रूपवती, गुणवती और विद्यावती थी। उसी नगरमें एक वैश्य रहता था। उसका नाम समुद्रदत्त था, वह महा मिथ्यादृष्टी था। उसके सागरदत्त नामका एक पुत्र भी था।

एक दिन नीलीबाई श्री जिन मंदिरमें पूजा करके सामायिक कर रही थी कि, सागरदत्त अपने मित्रके साथ यहां वहां फिरता हुआ जिन मंदिरजीमें पहुंचा और नीलीबाईकी सुन्दरता देखकर मोहित हो गया। वह घरपर आया तो सही, पर नीलीबाईसे

---

१. छठवें स्थितिकरण अंगमेंकी कथामें इसके आगेका ही हाल लिखा है। २. एक ही।

व्यांह करानेकी चिंता उसे लग गई, और इससे वह दिनरात दुबला होने लगा; यहां तक कि वह खानपान और निद्रा भी भूल गया।

जब सागरदत्तके पिताको यह हाल मालूम हुआ, तो वह कहने लगा कि, नीलीबाईका पिता जैनधर्मी होनेके कारण सिवाय जैनधर्मीके किसीको अपनी पुत्री नहीं देगा, इसलिये दोनों पिता पुत्रने दिखाऊ रूपसे जिन दीक्षा ले ली और जिनमंदिरमें जाकर दर्शन पूजा स्वाध्याय आदि करने लगे और जैनी बन जानेका लोगोंको विश्वास करा दिया।

बेचारे सेठ जिनदत्तजीने धोखेमें आकर नीलीका विवाह, समुद्रदत्तके साथ कर दिया। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें वे पिता पुत्र बौद्धधर्मी हो गये, और बेचारी नीलीका उसके पिताके घर जाना भी बंद करदिया। सेठ जिनदत्तजी उन दोनोंकी करतूतसे खूब पछताये, पर नीलीने धैर्य नहीं छोड़ा। वह जैनधर्मका पालन करती हुई पतिव्रत धर्मसे रहने लगी।

समुद्रदत्तने बाई नीलीको बहुत समझाया कि, तुम बौद्धधर्म स्वीकार करो, पर उसने एक न मानी। एक दिन समुद्रदत्तने सोचा कि, यह मेरे कहनेसे बौद्धधर्म अंगीकार नहीं करती, पर बौद्ध साधुओंके कहनेसे शायद मान जावेगी, इसलिये उसने बौद्ध साधुओंको भोजन करानेके लिये नीलीबाईसे कहा। नीलीबाईने, इच्छा न होनेपर भी स्वसुरके कहनेसे बौद्ध साधुओंको बुलवाया।

जब वे आये और आदर सहित कोठेमें बैठाये गये, तब नीलीने दासीके द्वारा एक साधुके जूते मंगवाये और उनका

बारीक चूर्ण करके भोजनकी मिठाइयोंमें मिला दिया, और जब वे पाखंडी भोजनोंको चौकेमें गये तो वे ही मिठाइयां उन्हें खिला दीं।

जब वे साधु जाने लगे और अपने अपने जूते पहिने, तो एक साधुके जूते नहीं मिले, तब नीलीबाईसे उनका पता पूछा। नीलीबाईने उत्तर दिया कि, हे महाराज! हमारे स्वसुरजी तो कहने लगते हैं कि, बौद्ध गुरु अन्तरजामी होते हैं। सो आप कैसे अन्तरजामी हो? आपको तो आपके जूते भी नहीं दिखते। आपके जूते तो आप लोगोंके पेट ही में पहुंच गये हैं। यह सुनकर एक साधुने उसी समय उछाल किया, तो सचमुच उसमें चमडेके टुकडे निकले।

बौद्ध साधु तो लज्जित होकर चले गये, परन्तु साधुओंका ऐसा अपमान करनेसे, समुद्रदत्त और उसके घरके सब लोग नीलीबाईके शत्रु बन गये। उसकी ननदने तो उसे कुशील दोष लगा दिया।

यह झूठा और भयंकर अपयश सुनकर नीलीबाईको बहुत खेद हुआ। वह जिन मंदिरजीमें गई और श्रीजीके साम्हने खड़ी होकर हाथ जोड़के विनती करने लगी कि, हे नाथ! जब तक इस कलंकसे निर्मल नहीं होऊंगी तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी।

जब उस नगरकी देवीको यह हाल मालूम हुआ, तो उसने रात्रिको नीलीके पास आकर धीरज बंधाया और शहरके दरवाजे बन्द करके वहांके राजा और मंत्री आदिको स्वप्न दिया कि, किसी शीलवती स्त्रीके पांवकी लात लगनेपर किवाड़ खुलेंगे।

जब सवेरा हुआ और वस्तीसे बाहरका आना जाना न हो सकनेके कारण लोग दुःखी होने लगे, तब राजाने रातके स्वप्नको याद करके शहरकी सब स्त्रियोंको बुलवाया और हरएकसे किवाड खुलवाये, पर किसीसे न खुले। अन्तमें नीलीबाईके पांवका अंगुठा लगनेसे ही सब दरवाजे खुल गये, यह देखकर राजाने और सब लोगोंने बाई नीलीकी बहुत बड़ाई की और बहुत सन्मान किया, जिससे पवित्र शीलव्रतकी बड़ी महीमा प्रसिद्ध हुई ।

हम सबको चाहिये कि नीलीबाईके समान पवित्र शील धर्मकी पालना करें ।

---

(१४) जयकुमारकी कहानी ।

जिस समयकी यह कहानी है, उस समय हस्तनापुरमें राजा **सोम** राज्य करते थे । उनके पुत्रका नाम **जयकुमार** था । वह बडा संतोषी और धर्मात्मा था। उसकी स्त्रीका नाम **सुलोचना** था।

एक दिन राजपुत्र जयकुमार और उनकी स्त्री सुलोचनाने एक विद्याधर और विद्याधरीको विमानमें बैठकर जाते देखा, सो उन्हें पूर्वभवका स्मरण हो आया । इससे वे दोनों अर्थात् जयकुमार, सुलोचना, बेसुध हो गये । थोड़ी देरमें जब वे सचेत हुए तब पूर्व जन्मकी साधी हुई विद्याएं उनके पास आई और प्रगट होकर कहने लगीं कि, आप जो आज्ञा देवेंगे सो ही हम करेंगीं ।

जब इन्हें पूर्व जन्मकी विद्याएं सिद्ध हो गई तो वे दोनों स्त्री पुरुष, कैलाशगिरिकी वन्दनाको गये । वहां राजा भरतके बन-

---

१ जयकुमार और सुलोचना भी पूर्व भवमें विद्याधर विद्याधरी थे।

वाये हुए जिन मंदिरोंकी पूजा कर रहे थे कि, स्वर्गमें देवताओंके राजा इन्द्रने देवताओंकी सभामें परिग्रह प्रमाणकी चरचा करते हुए जयकुमारकी बड़ी बड़ाई की। उसे सुनकर रतिप्रभदेवकी इच्छा हुई कि, जयकुमारके व्रतकी परीक्षा करें।

जब जयकुमार और सुलोचना पूजा करके बहुत दूर २ बैठे हुए थे, तब रतिप्रभदेव स्त्रीका रूप धरके तथा साथमें चार देवांगनायें लेकर जयकुमारके पास पहुंचा और कहने लगा कि आपकी स्त्री सुलोचनाके विवाहके समय जिस नमि विद्याधरने आपसे लड़ाई की थी उसकी मैं स्त्री हूं, सुरूपा मेरा नाम है, मुझे सब प्रकारकी विद्याएं सिद्ध हैं, मैं आपके रूपकी सुन्दरता सुनकर आपके पास आई हूं, और आपका रूप देखकर प्रसन्न भी हुई हूं, अब मैं आपके रूपके साम्हने अपने पतिसे विरक्त हुई हूं, आप मुझे अंगीकार करो, मैं संपूर्ण विद्याएं और राज्य आपको सौंपनेके लिये तत्पर हूं।

यह सुनकर जयकुमारने उत्तर दिया कि, ऐसा मत कहो, ऐसा राज्य और विद्याएं मुझे नहीं चाहिये, मेरे प्राण चाहे रहें चाहे जांय, पर मैं परस्त्री सेवन नहीं करूंगा। तेरा जैसा सुंदर रूप है, वैसे ही तू यदि शीलवान होती तो कितना अच्छा होता? सोनेमें सुगंध हो जाती। मनुष्यकी देह और सब अच्छे साधन पाकर तू अपने जीवकी भलाई नहीं करती, यह जानकर मुझे बहुत दुःख होता है। सो अब तू पतिव्रत धर्म धारण करके भगवान्‌की पूजा स्वाध्याय आदिमें तत्पर हो।

इस प्रकार बहुत समझाकर जयकुमारने सामायिकमें मन

लगाया और विधिपूर्वक सामायिककी क्रिया करके ध्यानमें लीन हो गये। तो वह बनावटी स्त्री अर्थात् रतिप्रभदेव, उन्हें ध्यानसे चिगानेके लिये अनेक विघ्न करने लगा। वह भांति भांतिके खोटे गीत गाने लगा और तरह तरहके विकराल रूप दिखाने लगा, परन्तु उस धीरवीर जयकुमारका चित्त चंचल न कर सका। तब अंतमें हार मानकर उस रतिप्रभदेवने अपना सच्चा रूप दिखा दिया और बड़े संतोषसे कहने लगा कि, हे जयकुमार! तुम धन्य हो। तुम्हारा संतोष और मनकी थिरता देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। मैं मनुष्यणी नहीं हूं, मैं स्वर्गका देव हूं, मेरा नाम रतिप्रभ है। इन्द्र महाराजने स्वर्गमें आपकी जैसी महिमा कही थी, मैंने तुम्हें वैसा ही पाया। इस प्रकार रतिप्रभने जयकुमारकी बहुत बड़ाई की और बहुतसे कपड़े गहने आदि भेटमें देकर, वह रतिप्रभ स्वर्गको चला गया।

जयकुमार अपनी स्त्री सुलोचना समेत कई दिन तक कैलास पर्वतपर रहे और भगवान्की पूजा वन्दना की। फिर अपने घर-पर आये और कुछ दिनों तक गृहस्थीका सुख भोगकर मुनि हो गये और महा तप करके मोक्षको पधारे। रानी सुलोचनाने भी श्रावकके व्रत धारण किये और समाधिपूर्वक मरणकरके स्वर्गको गई।

सारांश, जयकुमारको धन्य है। जो स्त्रियों और राज्यके लोभमें न पड़कर अपने धर्ममें दृढ़ रहे। उनकी यह कथा बांचकर हम सबको परिग्रहसे विरक्त होना चाहिये, अथवा तृष्णा घटाते घटाते बहुत थोड़े-परिग्रहमें संतोष मानना चाहिये।

(१४) धनश्रीकी कथा।

जिस समयकी यह कथा है उस समय लाट देशके भृगु-कच्छ नगरमें धनपाल सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम **धनश्री** था। वह बड़ी ही दुष्ट थी। उसके मनमें हिंसाके सिवाय और कुछ नहीं रुचता था। सेठ धनपालजी उसे पतिव्रत धर्म पालने, पतिकी आज्ञा मानने, चित्त लगाकर पतिकी सेवा करने, जीवोंकी दया पालने, सत्य वचन बोलने आदिके लिए उसे बहुत समझाया करते थे, परन्तु उसने एक भी नहीं मानी। इससे उन सेठ सेठानीकी आपसमें बिलकुल नहीं पटती थी, और न उस धनश्रीके द्वारा सेठ धनपालजीको कुछ सुख भी मिलता था।

भाग्यसे उन्हें एक लड़का और एक लड़की ये दो संतान हुए। लड़केका नाम **गुणपाल** और लड़कीका नाम **सुन्दरी** था। ये दोनों संतान होनेके पहिले ही उन सेठ सेठानीने अपने पास एक लड़का रख छोड़ा था उसे वे पुत्रके समान मानते थे। उस लड़केका नाम **कुंडल** था।

जब सेठ धनपालजी मर गये और कुंडल जवान हुआ तो उस दुष्ट धनश्रीने कुंडल ही से पतिका नाता लगा लिया और उसके साथ व्यभिचार करने लगी। सो ठीक ही है, स्त्रियां स्वभावसे ही कुटिल होती हैं, और स्वतंत्रता मिलने पर तो उनकी कुटिलताका ठिकाना नहीं रहता।

जब धनश्रीका असली लड़का गुणपाल बड़ा हुआ तब वह पापिनी सोचने लगी कि, अब यह भलाई बुराई समझने लगा है

सो यह मेरी और कुंडलकी यारीमें विघ्न करेगा, इससे मुझे यह कांटा निकाल डालना चाहिये, अर्थात् गुणपालको मार डालना चाहिये। इसलिये रात्रिको कुंडलसे कहने लगी कि सवेरे गुणपालको गायें चरानेके लिये जंगलको भेजूंगी और तुम हथियार लेकर उसके पीछे पीछे चले जाना सो उसे मार डालना। जब गुणपालको मार डालोगे तब ही हम और तुमको ठीक आनद मिलेगा। कुंडलने भी धनश्रीकी यह सलाह मान ली, परंतु गुणपालकी बहिन सुन्दरी, इन दोनोंकी वे बातें छिपी हुई सुन रही थी, इसलिये उसने अपने भाई गुणपालको सावधान कर दिया और रातका सब हाल सुना दिया। उसे सुनकर गुणपालको बड़ा खेद हुआ। वह क्रोधमें आकर कहने लगा कि, हे बहिन! तूने बड़ा अच्छा किया, जो मुझे सचेत कर दिया, और भी समय समयपर जो हाल हुआ करे मुझसे कह दिया करो। अब मैं भी कुंडलको मार डालनेके उपायमें हूं।

सवेरा नहीं होने पाया था कि, धनश्रीने गुणपालसे कहा कि, हे बेटा गुणपाल! आज कुंडलको ज्वर आ गया है, इसलिये तुम हीं ढोर चरानेके लिये जंगलको जाओ। गुणपालको सब हाल तो पहिले ही से मालूम था, इसलिये उसने चुपचाप ढोर लेकर अँधेरे ही में जंगलको चल दिया, परन्तु एक तलवार अपने कपड़ोंमें छिपा ली, और जल्दीसे जंगलमें पहुंचकर अपना कोट पायजामा एक सूखे झाड़को पहिना दिया फिर आप वहीं जंगलमें छिप गया।

जब थोड़ी देरमें कुंडल वहां पहुंचा, तो गुणपालको यहां वहां

ढूंढ़ने लगा। ढूंढते ढूंढ़ते कपड़े पहिने हुए वृक्षका ठूंठ ही उसे दिखाई दिया। कुंडलने उस ठूंठको गुणपाल ही समझकर कुल्हाड़ी मारी, पर वह गुणपाल नहीं था, गुणपालके कपड़े पहिने हुए ठूंठ था सो उस ठूंठके दो टुकड़े हो गये। उन्हें देखकर कुंडलको बड़ा अचरज हुआ, और बहुत घबराया। वह सोच विचार ही कर रहा था कि, इतनेमें पीछेसे गुणपाल आया और उसने तलवारसे कुंडलके दो टुकड़े कर दिये। पापी कुंडल जो गुणपालको मारना चाहता था, गुणपाल ही के हाथसे मारा गया।

जब गुणपाल लौटकर घर आया, तो उसके कपड़ोंपर रक्तके धब्बे तो दिखाई दिये पर कुंडल न दिखा। तब धनश्रीने पूछा कि कुंडल कहां है? तब गुणपाल पहिले तो चुप रह गया, फिर बड़े साहसके साथ कहने लगा कि, "इस तलवारसे पूछ ले।"

तब तो धनश्रीने समझ लिया कि, गुणपालने कुंडलको मार डाला है, इसलिये उससे क्रोधित होकर गुणपालके हाथसे तलवार छुड़ा ली और उस तलवारसे गुणपालकी हत्या कर डाली। जब सुन्दरीने देखा कि, धनश्रीने प्रिय गुणपालको मार डाला है, तो वह मूसल लेकर धनश्रीको मारने लगी। दोनोंकी आपसमें मारामार हो रही थी कि, इतनेमें ये सब समाचार नगरके थानेदारको मालूम हुए और धनश्रीको पकड़ कर राजाके पास ले गया। राजाने हत्यारी जानकर अपने नौकरोंको आज्ञा दी कि, इसके नाक कान काट लो, गधेपर बैठाकर सब बस्तीमें फिराओ और बड़ी दुर्दशा करके मार डालो। राजाके नौकरोंने वैसा ही किया और दुष्ट धनश्री खोटे ध्यान पूर्वक मरण करके नर्कको गई।

हिंसक जीवोंको धनश्रीके समान दोनों जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है, यह जानकर हिंसाका त्याग करना चाहिये।

---

(१५) सत्यघोषकी कहानी।

इसी भरतक्षेत्रमें सिंहपुर नगर था। वहां राजा **सिंहसेन** राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम **रामदत्ता** था। उसी नगरमें एक पुरोहित रहता था। उसका नाम **श्रीभूत** था। वह बड़ा ही ठगिया था। लोगोंको धोखा देनेके लिये उसने अपने जनेऊमें एक छोटासा चाकू बांध रक्खा था, और लोगोंसे कहा करता था कि, यदि मैं भूलसे भी झूठ बोल जाऊं तो इस चाकूसे अपनी जीभ काट डालूं। उसने अपने आप ही अपना नाम **सत्यघोष**[१] रख लिया था। वस्तीके लोग उसका बहुत भरोसा करते थे। बहुतसे मनुष्य तो उसके यहां अपना धन धरोहर रख आते थे। परन्तु वह सत्यघोष किसी किसीकी धरोहर तो लौटा देता था, और कई मनुष्योंकी नहीं लौटाता था। कोई कोई मनुष्य राजाके पास जाकर उसकी नालिश भी करते थे, परन्तु सत्यघोषने राजाके चित्त पर अपना बड़ा भरोसा जमा रक्खा था, इससे राजा किसीकी भी नहीं सुनता था।

एक दिन पद्मखंड नगरका रहनेवाला समुद्रदत्त नामका व्यापारी सिंहपुर नगरमें आया। उसकी इच्छा परदेशमें जाकर व्यापार करनेकी थी। सो उसने सोचा कि, कहीं व्यापारमें टोटा पड़े या जहाज आदि डूब जावे, तो यहांपर रक्खा हुआ धन काम

---

१. सच बोलनेवाला।

आवेगा, इसलिये उसने सत्यघोषके पास पांच रत्न जमा कर दिये, और रत्नद्वीपको चला गया।

वहां कई दिनों तक रहकर उसने बहुतसा धन कमाया। जब लौटकर आने लगा तो वैसा ही हुआ जैसा कि उसने सोचा था अर्थात् उसका जहाज टकराकर फट गया जिससे उसके साथी और सब धन समुद्रमें डूब गया। बेचारा समुद्रदत्त, जहाजके एक टूकड़ेके सहारे तैरता कठिनाईसे किनारेपर आ सका और सीधा सत्यघोषके पास चला आया।

सत्यघोषने जहाज डूबनेकी बात पहिले ही सुन ली थी। से समुद्रदत्तको आता देखकर उसने समझ लिया कि, यह अपने रत्न अवश्य मांगेगा, इसलिये सत्यघोषने एक फंद बनाया। वह अपने पासके बैठने वालोंसे कहने लगा कि आज कुछ अशुभ होनहार है। देखो! वह भिखारीसा आ रहा है, जान पडता है कि, यह वही मनुष्य है जिसका कल जहाज डूब गया सुना था। धन डूब जानेसे पागलसा हो गया दिखता है, न जाने मुझसे क्या मांगेगा।

इतनेमें समुद्रदत्त ही आ गया और नमस्कार करके पांचों रत्न मांगने लगा। तब सत्यघोषने पासके बैठनेवालोंसे कहा कि, देखो जी! मैंने जो पहिले कहा था वही निकला। और समुद्रदत्तको उत्तर दिया कि, मैं तो तुझे पहचानता भी नहीं हूं कि, तू कौन है, कहांका रहनेवाला है, फिर तेरे रत्न मेरे पास कहांसे आये? धन डूब जानेसे पागल हो गया दिखता है। किसी औरके यहां रखकर भूलसे यहां मांगनेको आया मालूम पड़ता है।

सत्यघोषने, समुद्रदत्तको ऐसी बहुतसी बातें कहीं और खूब डांट लगाई। फिर उसे अपने नौकरोंके हाथ राजाके पास भेज दिया और कहला भेजा कि यह दरिद्री हमें विना कारण कष्ट देता है। आप इसका प्रबंध करदें। राजा सिंहसेन इस झूठे सत्य-घोषको सच्चा सत्यघोष समझते थे, इसलिये उन्होंने बेचारे समुद्र-दत्तकी एक भी नहीं सुनी और झूठा कहकर निकलवा दिया।

पापी सत्यघोषके द्वारा ठगा जानेसे बेचारा समुद्रदत्त सच-मुच पागलसा हो गया। वह बस्ती और बाजारमें जहां तहां कहता फिरा कि, सत्यघोष मेरे पांच रत्न नहीं देता है, पर किसीने उसे सच्चा नहीं माना, सब लोग उसे पागल बतलाने लगे।

समुद्रदत्त दिनभर तो शहरमें रोता हुआ घूमता फिरता और रातको राजाके महलके पीछे एक झाडपर चढ़कर पुकारा करता था कि, 'मैं सत्यघोषके पास पांच रत्न जमाकर गया था सो नहीं देता है' ऐसा करते उसे छह महिने हो गये।

एकदिन महारानी रामदत्ताने, समुद्रदत्तका एक ही वाक्यसे चिल्लाना सुनके राजासे कहा कि, आप सत्यघोषके ढोंग ही में न भूल जावें, बिचारे समुद्रदत्तका ठीक ठीक न्याय करें। राजाने रानीके कहनेसे समुद्रदत्तको बुलवाया तो उसने सब सत्य वार्ता राजासे कह सुनाई। राजाने रानीसे कहा कि, समुद्रदत्तकी बात सच पड़ती है, पर इसका भेद खुलनेका उपाय नहीं सूझता। रानीने कुछ देर तक सोच विचारकर राजासे कहा कि, मैं इसका उपाय सोचूंगी।

दूसरे दिन रानीने सत्यघोषको अपने महलोंमें बुलवाया और चौपड़ खेलनेको कहा। पुरोहितजी महाराज रानीका कहना न टाल सके और डरते डरते चौपड़ खेलने लगे। रानीने पहिली ही बाजूमें पुरोहितजीकी अंगूठी जीत ली। वे उन्हें तो खेल ही खिलाती रहीं और चुपचाप दासीसे बुलाकर कहा कि, तुम सत्यघोषके घर जाओ और उनकी स्त्रीसे कहो कि सत्यघोषने यह निशानी तुम्हारे पास भेजी है और समुद्रदत्तके रत्न मंगाये हैं।

दासी, सत्यघोषके घरपर गई और उसकी स्त्रीसे कहने लगी कि, सत्यघोषने यह अंगूठी पहिंचानके लिये भेजी है, और समुद्रदत्तके पांच रत्न मंगाये हैं।

पुरोहितिनजीने दासीको उत्तर दिया कि, यह अंगूठी पुरोहितजी कैसी तो जान पड़ती है, पर उन्होंकी है या नहीं इसका ठीक विश्वास नहीं होता।

दासी लौटकर रानीके पास पहुंचने ही पाईथी कि वहां रानीने पुरोहितजीका चाकू और जनेऊ भी जीत लिया था। जब दासीने पुरोहितिनका दिया हुआ उत्तर रानीको सुनाया तब रानीने वह जीता हुआ जनेऊ और चाकू दासीको सौंपकर फिर पुरोहितिनजीके पास भेजा और पुरोहितजीको खेलमें लगाये रही।

दासी फिर सत्यघोषकी स्त्रीके पास गई और जनेऊ तथा चाकू उसके हाथमें देकर कहने लगी कि, बाई साहबा! क्या अब भी आपको संदेह है? अब कृपा करके समुद्रदत्तके रत्न दे दीजिये।

चाकू और जनेऊ देखकर सत्यघोषकी स्त्रीको पक्का भरोसा हो गया, वह दासीकी बातोंमें आ गई, इससे उसने पांचों रत्न दासीको दे दिये। दासीने जाकर पांचों रत्न रानीको चुपचाप दे दिये।

रानीने प्रसन्न होकर खेल समाप्त किया और पुरोहितजी घरको विदा हुए। रानीने रत्न ले जाकर राजाके साम्हने रख दिये और रत्नोंका पता लगानेकी सब वार्ता उन्हें कह सुनाई। महाराजने सिपाही भेजकर, सत्यघोषको उसी समय पकड़ बुलाया। बिचारे पुरोहितजी बहुत चकराये, पर उन्हें क्या मालूम था कि उनका भाग फूट चुका है।

राजाने रानीके दिये हुए रत्नोंको अपने पासके बहुतसे रत्नोंमें मिला दिया और समुद्रदत्तको बुलाकर कहा कि, इन रत्नोंमेंसे अपने रत्न पहिचान लो। समुद्रदत्तने वैसा ही किया और उन सब रत्नोंमेंसे अपने रत्न उठाकर प्रसन्न हुआ।

जब समुद्रदत्तने केवल अपने ही रत्न उठाये, तब तो सत्य-घोषकी लुच्चाई राजाकी समझमें पूरी पूरी आ गई और मंत्रियोंकी सलाहसे, तीन दंडमेंसे कोई एक दंड सहनेके लिये सत्यघोषसे कहा। (१) या तो तीन थाली गोबर खाओ (२) या हमारे पहल-वानके बत्तीस घूंसे सहो (३) अथवा अपना सब धन दे देओ।

पापी सत्यघोष लज्जाके मारे मर ही चुका था। उसने पहिले तो गोबर खाया, पर उतना बहुतसा गोबर उससे न खाया गया! तब पहलवानके घूंसे लगवानेको राजासे कहा, परन्तु जब पहलवानके एक ही घूंसेमें वह अधमरा हो गया तो लाचार होकर अपना सब

चन राजाको देना पड़ा। इस प्रकार उस मूर्खने तीनों ही दंड भोगे और थोड़े ही दिनोंमें खोटे भावोंसे मरकर कुगतिमें गया।

सत्यघोषकी- यह कहानी बांचकर हम लोगोंको सचाईसे रहना चाहिये।

---

[१६] साधु भेषधारी चोरकी कहानी।

पूर्वकालमें कोसाम्बी नगरीमें राजा सिंघरथ राज करते थे वे बड़े न्यायवान् थे। उनकी स्त्रीका नाम विजया था। उस नगरीमें एक चोर रहता था। वह साधुके वेशमें रहता और बड़के वृक्षकी डालसे सींका बांधकर उसमें बैठ जाता था। लोग उसके पास जाते तो उनसे कहा करता था कि, दूसरेकी वस्तुकी तो बात ही क्या है, पर मैं धरती तक नहीं छूता हूं। दिनभर उसका यही हाल रहता था, पर रातको बस्तीमें जाकर चोरी किया करता था। उसके साधुभेष और मीठी मीठी बातोंके कारण लोगोंपर उसका इतना विश्वास बढ़ गया था कि किसीको उसपर सन्देह भी नहीं होता था।

जब शहरमें बहुतसी चोरी हुई और उसका पता न लगा तब राजाने थानेदारको बुलाकर खूब डांट लगाई। बेचारा थानेदार जहां तहां पता लगाता फिरा पर कुछ पता नहीं लगा। अन्तमें हार मानकर इसी चिन्तामें बैठा था कि इतनेमें एक भिखारी ब्राह्मण उसके पास पहुंचा और भोजनके लिये उससे कुछ मांगा। थानेदारने उत्तर दिया कि भाई, मुझे तो प्राणोंकी पड रही है और तुझे भीख मांगनेकी पड़ रही है। भिखारी ब्राह्मणने थानेदारसे

इसका कारण पूछा। पहिले तो थानेदारने कुछ नहीं कहा, पर ब्राह्मणके बारबार पूछनेपर उसने सब हाल कह सुनाया।

ब्राह्मणने सोच विचारकर कहा कि चोरी करनेवाला वही मनुष्य होगा जो सचाईके लिये बहुत प्रसिद्ध है। बहुतसे मनुष्य अपनी सचाईका बड़ा ढोंग फैलाते हैं और अंतमें वे बड़े ठग निकलते हैं।

थानेदारने कहा कि यहां एक साधु बड़ा ही संतोषी मनुष्य है। मुझे तो उस बेचारेपर बिलकुल संदेह नहीं होता। मैं उसे महात्मा समझता हूं।

ब्राह्मण बोला कि, आप उसकी सचाईका ठीक पता लगावें। जिसे आप महात्मा बतलाते हैं वही चोर निकलेगा। इसके लिये मैं अपने ऊपर बीती हुई एक वार्ता आपको सुनाता हूं, आप चित्त लगाकर सुनिये।

थानेदारने उत्तर दिया, अच्छा कहो।

ब्राह्मण कहने लगा कि, मेरी स्त्रीने अपनेको महा सती प्रसिद्ध कर रक्खा था। जब वह बच्चेको दूध पिलाती थी तो अपनी दोनों छाती कपडेसे खूब ढांक लेती थी, केवल काली बुट्टी निकालकर बच्चेके मुंहमें दबा देती थी। बच्चेको अपनी छाती नहीं छूने देती थी। कारण पूछनेपर उत्तर दिया करती थी कि, बच्चा भी पर पुरुष है, यदि पर पुरुष मेरी छाती छू लेवे, तो मेरा शील भंग हो जावे। पर यह सब उसका ढोंग ही निकला। क्योंकि मैंने

१. स्तन, कुच।

अपनी ही आंखोंसे उसे दूसरोंके साथ व्यभिचार करते देखा था और तभीसे मैं संसारसे विरक्त होकर तीर्थयात्राको निकल पडा हूं।

मैं पहिले भिखारी नहीं था। मेरे पास बहुत धन था। उसका मैंने सोना ले लिया था और उसे एक पोली लाठीमें भरके उसका मुंह बन्द कर रक्खा था। उस लाठीको मैं अपने ही पासमें रखता था। यात्रा करते फिरते मुझे एक लड़का मिल गया और वह भी यात्रामें साथ रहने लगा। पहिले मुझे उस लड़केका विश्वास नहीं था, इसलिये मैं उस लाठीको उस लड़केसे बचाये रहता था।

एक दिन सांझको एक कुम्हारके यहां मैं और वह ठहरे रहे। जब सवेरा होनेपर दोनोंने चल दिया और बहुत दूर निकल गये तब वह लड़का सिरपर हाथ रखके कहने लगा कि, अरे! रे! रे! मुझसे बड़ी भूल हो गई है। जिसके यहां हम आप, रातको ठहरे रहे थे उसका यह एक तिनका मेरी पगड़ीमें बीधा चला आया है। मैं चोरीका त्यागी हूं, उसका तिनका उसके घरपर देनेको जाता हूं। लड़का कुंभकारके घर तक गया और तिनका सौंपकर वापिस आया। तबसे मैं उसपर बड़ा भरोसा करने लगा था।

एक दिन सांझके समय एक गांवमें, वह और मैं ठहरा। मेरे पासका भोजन चुक गया था, सो मैंने साथके लड़केसे भोजन लानेको कहा। लड़का कहने लगा कि भोजन लेकर लौटते लौटते रात्रि बहुत हो जावेगी, इससे अपनी यह लाठी मुझे दे दीजिये, रास्तेमें कुत्ते इत्यादिको ताड़नेके काम आवेगी। उसकी ये बातें सुनकर मैंने वह लाठी उसे दे दी। वह पापी, हाथमें लाठी लेकर भोजन लेनेको चला गया और फिर नहीं आया। " ब्राह्मण रोते

रोते कहने लगा कि, मैंने उसका बहुत पता लगाया पर नहीं लगा।"

इसके सिवाय ब्राह्मणने कई ढोंगी ठगोंकी बातें सुनाईं और ऊंचे स्वरसे कहा कि, जिस तापसीको आप, बड़ा सच्चा बतलाते हैं वही चोर होगा। मैं ही आज रात्रिको उसका पता लगाऊंगा। ब्राह्मणकी इस बातचीतका थानेदारके चित्तपर बड़ा असर पड़ा। उसने तापसीकी परीक्षा करनेको ब्राह्मण ही से कहा।

रात होते ही वह ब्राह्मण तापसीके आश्रमकी ओरसे निकला, तो तापसीके चेलोंने उसे टोका कि; कौन है? ब्राह्मण, बड़ी दीन वाणीसे कहने लगा कि, मैं रास्तागीर हूं, मुझे रातको सूझता नहीं है, यहां कहीं एक कोनेमें ठहर जाने दो। सवेरे कुछ कुछ दिखने लगेगा, तब चला जाऊंगा। चेलोंने यह हाल अपने गुरुसे कहा। तो तापसीने सोचा कि; यह अंधा है; हमारे काममें कुछ बाधा नहीं डाल सक्ता, इसलिये उस ब्राह्मणको एक कोनेमें सोते रहनेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलनेपर वह ब्राह्मण एक कोनेमें पड़ रहा और चुपचाप टकटकी लगाकर सब हाल देखने लगा।

आधी रातको जब शूनशान हुई, तो तापसी और उसके चेलोंने नित्यका काम चालू करदिया। वे शहरमें गये और बहुतसा धन चुराकर लाये। तापसीके आश्रमके पास ही एक कुआ था, उसमें वह सब चोरीका धन डालते गये। उस कुएके पास एक गुफा थी, उसमें तापसीके स्त्री बच्चे रहते थे। उन सबके भोजन आदिका खर्च चोरीके धनसे हुआ करता था। यह सब

हाल ब्राह्मणने चुपचाप देख लिया और सवेरा होनेपर थानेदार और राजाको मालूम कर दिया। राजाने, तापसी और उसके चेलोंको तुरन्त ही पकड़ बुलाया। फिर ठीक खातरी करके पापी तापसीको तो फांसीका दण्ड दिया, सो खोटे भावोंसे मरकर नर्कको गया और तापसीके चेलोंको जहलखानेकी सजा दी।

सारांश, चोरी महा पाप है, इस भवमें और परभवमें दुःखदायक है। ऐसा जानकर चोरी नहीं करना चाहिये।

---

(१७) यमदंड कोतवालकी कथा।

नाशिक नगरमें राजा **कनकरथ** रहते थे। वे प्रजाका पालन करनेमें सदा सावधान रहते थे। उस नगरमें जो थानेदार था उसका नाम **यमदंड** था। यमदंडकी माताका नाम वसुंधरा था। वह छोटी ही उमरमें विधवा हो गई थी और व्यभिचारिणी भी अधिक थी।

एक दिन रात्रि होनेपर यमदंड तो शहरकी चौकसी करनेको चला गया और यहां वसुंधराने यमदंडकी बहुतसे कुछ गहने मंगाये। उन्हें लेकर अपने यारको देनेके लिये, उसके बताये हुए ठिकानेपर, जा रही थी कि, यमदंडने उसे देखा। यमदंडने सोचा कि, कोई व्यभिचारिणी स्त्री है जो अपने यारके पास जारही है, इसलिये वह भी वसुंधराके पीछे पीछे चला।

जब वसुंधरा, अपने यारके बताये हुए ठिकानेपर पहुंची तब यमदंड भी उसके पास चला गया। अंधेरेमें किसीने किसीको

नहीं पहिचाना। वसुंधराने तो यह सोचा कि मेरा यार आगया है और यमदंडने यह सोचा कि, कोई व्यभिचारिणी स्त्री है, इसलिये यमदंडने वसुंधराके साथ पाप किया और उसके दिये हुए गहने घरपर लेता आया और अपनी स्त्रीको दे दिये।

जब यमदंडकी स्त्रीने अपने गहने अपने ही पतिके द्वारा वापिस पाये तो उसे बड़ा अचरज हुआ। वह पतिसे इसका कारण पूछने लगी कि, ये गहने तो मैंने सासबाईको दिये थे, आपके हाथमें कैसे पहुंचे ? यमदंडने अपनी स्त्रीको तो यों ही बातोंमें टाल दिया, परन्तु उस पापीको अपनी माता ही के साथ कुकर्म करनेका चसका लग गया। और रूप छिपाये रखकर उसके साथ काम सेवन करने लगा। ठीक है, जिस मनुष्यकी आंखें विषयवासनासे अंधी हो जाती हैं उसे भला बुरा कुछ नहीं सूझता।

यमदंडकी स्त्रीको उसी दिन संदेह हो गया था, परन्तु कई दिनके बाद जब उसे पक्का पता लगा तब उसे बड़ा दुःख हुआ। जब स्त्रियोंकेद्वारा राजाकी मालिनको यह हाल मालूम हुआ तो मालिनने रानीके पास जाकर चरचा की और रानीने महाराज कनकरथसे ये समाचार कह दिये।

मातांके साथ व्यभिचार करनेकी वार्ता सुनकर राजाको एकाएक भरोसा नहीं हुआ। उन्होंने इसका पक्का पता लगानेके लिये अपने सिपाहियोंसे कहा। सिपाही रात्रिको इसकी खोजमें निकले और उन्होंने यमदंडको कठिन दंड दिया, जिससे वह थोड़े ही दिनोंमें मरकर नर्कको गया।

पुरुष हो, या स्त्री हो, किसीको भी यदि व्यभिचारका चसका लग जाता है तो वे माता पिता वहिन भाई आदिके साथ भी पाप करनेसे नहीं चूकते, जिससे उन्हें इस भव और परभवमें बहुत दुःख उठाना पडते हैं, ऐसा जानकर ब्रह्मचर्यमें दृढ रहना चाहिये अथवा स्त्रीको अपने पतिमें और पुरुषको अपनी स्त्रीमें संतोष रखना चाहिये।

[१८] लुब्धदत्तकी कथा।

अयोध्या नगरीमें एक सेठ रहते थे, उनका नाम भवदत्त था। उनका एक लडका था, उसका नाम **लुब्धदत्त** था। लुब्धदत्तका जैसा नाम था, वैसा उसमें गुण भी था। अर्थात् वह बहुत लोभी था। एक दिन वह व्यापारके लिये विदेशको गया, और वहां जाकर बहुत धन कमाया। जब वह बहुतसा धन लेकर घरको लौटा आरहा था तब रास्तेमें उसे चोरोंने घेर लिया और उसका सब धन लूट लिया। विचारा लुब्धदत्त धनहीन होकर घरको चला।

रास्तेमें उसे अहीरोंके[1] घर मिले। उनके पास बहुतसा मही देखकर उसकी इच्छा मही पीनेकी हुई और उसने एक ग्वालियेसे मही मांगा। ग्वालियेने लुब्धदत्तको जो मही दिया था, उसमें थोडासा मक्खन भी था, सो उसने छांछ[2] तो पी ली, और मक्खन बचा लिया। उसने सोचा कि, इस रीतसे हररोज मही पिया करूं और मक्खन बचा लिया करूं तो थोडे ही दिनोंमें बहुतसा मक्खन

---

१ गायें भैंसें पालकर घी दूध बेचनवाले ग्वाला। २ छांछ।

जुड़ जावेगा, सो उसे वेचकर फिर रोजगार करने लगूंगा। ऐसा सोचकर वह वहीं झोपड़ी बांधकर रहने लगा।

वह प्रतिदिन ग्वालियोंसे मट्ठा मांग लाता और उसमेंका चिपका हुआ मक्खन बचाकर नीरी छांछ पी लिया करता था। ऐसा करते करते उसने एक मटकी भर घी जमा कर लिया था। प्रति दिनका यह काम देखकर वहांके ग्वाल उसे **श्मश्रुनवनीत** कहकर पुकारने लगे थे।

जाड़ेके दिनोंमें एक रात्रिको लुब्धदत्तने अपनी झोपडीके भीतर आग जलादी और आप खाटपर लेट गया। इतनेमें साम्हने सींकेपर टंगी हुई घीकी मटकीपर उसकी नजर पडी। उसे देखकर वह मनमें विचारने लगा कि, अब बहुत घी जमा हो गया है, इसे बेंचकर व्यापार करूंगा। जब अन्न कपास आदिके व्यापारसे मैं बहुत धनवान् हो जाऊंगा और लोग मेरा आदर करने लगेंगे, तो राज्य प्राप्त करनेका उपाय करूंगा, और राज्य बढ़ाते बढ़ाते जब मैं राजाओंका राजा हो जाऊंगा तब रातको सतखंडे महलमें पलंगपर लेटूंगा, और जब मेरी स्त्री मेरे पांव मलेगी तब मैं उससे हसीमें कहूंगा कि, कैसे पांव दाबती है? तुझे अब तक पांव दाबना नहीं आता? ऐसा कहके लात फटकार दूँगा।

लुब्धदत्त इन विचारतरंगमें इतना मग्न हो गया कि, उसे कुछ भी सुधि न रही। उसने सचमुच बडे जोरसे लात फटकार दी और वह घीके घड़ेमें लगगई। लातकी ठोकर लगनेसे घीका घड़ा फूट गया और घी गिरकर अग्निपर फैल गया, जिससे आग खूब ही भड़क उठी और बढ़कर झोंपड़ीमें लग गई।

घी फूटनेका एकदम भड़ाका सुननेपर, वह लुब्धदत्त कुछ सावधान भी हो गया था, परन्तु आगके वेगके साम्हने वह कुछ न कर सका। चारों तरफसे आग फैलनेके कारण वह 'मनका राजा' झोंपड़ीसे बाहिर न निकल सका। वेचारा वहीं जलकर राख हो गया और मरणकालमें भी खोटे ध्यानसे शरीर छोड़कर कुगतिमें गया।

देखो! परिग्रहप्रमाण न होनेसे लुब्धदत्तकी आशा बढ़ती ही गई। इसलिये प्रथम तो परिग्रहको बिलकुल ही छोड़ना चाहिये और यदि बिलकुल न छोड़ा जासके तो परिग्रहका प्रमाण कर लेना चाहिये कि, इतनेसे अधिक नहीं रक्खूंगा और लुब्धदत्तके समान मनके लड्डू तो कभी नहीं खाना चाहिये।

गीता छंद मात्रा २८।

यमपाल थे चंडाल उनको, देव सिंहासन रचे।
धनदेवजी नित्य सत्य बलपर, अग्नि ज्वालासे बचे।
असि-धारतें माला रची ते, बारिषेणकुमार हैं।
नीली सतीके चरणरजतें, खुले वज्र किवार हैं ॥१॥
नहिं चिगे धनके लोभसे जय-देव तय श्रुति उच्चरी।
इमि पंचव्रत गह पंच भवि जन, अतुल महिमा विसतरी ॥
व्रत पांच हैं नित परम सुखदा, लोक और अलोकमें।
तातें गहो तिनको तुरत ही, वसो सिद्धन थोकमें ॥२॥

कर घोर हिंसा धनश्रीने, दुःख दुरगतिके लहे।
श्रीभूतने वच झूठ कहके, दंड तीनों ही सहे ॥

दिन तापसीका वेष धरि-निशि, करी चोरी नीचने।
यमदंडने निज मातु भोगी गहा उसको मीचने ॥३॥
सठ लुब्धदत्त प्रलोभ वश, जल मरा अग्नि प्रचंडमें।
इमि पांच अघसे पांच पापी, पड़े तद्भव दंडमें ॥
अघ पांच हैं नित परम दुखदा, लोक और अलोकमें।
तातें तजो तिनको तुरत ही, वसौ सिद्धन थोकमें ॥४॥

चार दानकी चर्चा ।

देवे, सो दान । अर्थात् दूसरोंको देना सो दान है । यहां मोक्षमार्गका प्रयोजन है, सो अपने व दूसरोंके आत्माकी भलाईके लिये योग्य रीतिसे योग्य वस्तु, योग्य पात्रको योग्य दाताके द्वारा दी जानेको दान कहते हैं । यद्यपि दानके अनेक भेद हो सक्ते हैं, पर भोजन, औषधि, ज्ञान, और अभय, ये चार दान प्रसिद्ध हैं । तथा जिनेंद्र भगवान् आदिकी पूजा भी चारों दानमें गर्भित है, इसलिये पूजा भी उत्तम दान है ।

पूर्वमें लिख आये हैं कि पांच पाप रूप अशुभ परणतिके त्याग और शुभ परणतिके आचरणको व्यवहारमें सम्यक् चारित्र कहते हैं । दान शुभ परणति है इस लिये दान भी सम्यक् चारित्र है ।

श्री रत्नकरंड श्रावकाचारजीमें कहा है कि, भोजन दानमें **राजा श्रीषेण,** औषधि दानमें बाई **वृषभसेना,** ज्ञान दानमें राजा **कौंडेश,** अभय दानमें एक **सुअर** और पूजामें एक **मेंडक** प्रसिद्ध हैं, इनमेंसे राजा श्रीषेणकी कहानी इस प्रकार है ।

---

(१९) राजा श्रीषेणकी कहानी ।

जिस समयकी यह कथा है, उस समय मलय देशमें बल नामका एक गांव था । वहां **धरणीजट** नामका एक ब्राह्मण था । उसके दो पुत्र थे । जब वह ब्राह्मण उन दोनों लड़कोंको

पढ़ाता था तब एक नीच जातिका लड़का जो उसके यहां रहता था, छिपकर उसका पढ़ना सुना करता था। उस शूद्र लड़केका नाम **कपिल** था। कपिलकी बुद्धि बहुत तेज थी, इसलीये वह सुनते सुनते ही बड़ा पंडित हो गया।

जब बस्तीके ब्राह्मणोंको मालूम हुआ कि कपिल नीच जातिका लड़का है और उसने धरणीजटसे विद्या सीख ली है, तब उन्होंने धरणीजटको खूब डांट लगाई। धरणीजट भी कपिलकी इस चालाकीसे बहुत अप्रसन्न हुआ और उसको घरसे निकाल दिया।

तब कपिलने उस गांवका रहना छोड़ दिया। वह जनेऊ[1] पहिनकर ब्राह्मण बन गया और रत्नसंचयपुरको चला गया। वहां उसकी, एक **सात्यकी** नामके ब्राह्मणसे भेंट हुई। सात्यकीने इसे रूपवान और विद्यावान देखकर तथा ब्राह्मण समझकर अपनी कन्या **सत्यभामा** इसे विवाहदी, और वहांके राजा **श्रीषेण**ने कपिलके ज्ञानकी बड़ाई सुनकर अपने यहां शास्त्र बांचनेको रखलिया।

वहां कपिल अपनेको ब्राह्मण ही बतलाता रहा और ब्राह्मणकी लड़कीसे विवाह कराके आनंद करने लगा। परंतु सत्यभामाको इसकी जातिपर संदेह रहा करता था। क्योंकि वह संध्यापूजन आदि ब्राह्मणोंके कामोंमें बहुत शिथिल रहता था और उसका वर्ताव ऊंचे कुलके मनुष्योंके समान नहीं था। एक दिन जब सत्यभामा रजस्वला[2] थी, तब भी कपिलने सत्यभामाके साथ पाप करना चाहा। उसका यह नीच भाव देखकर सत्यभामाका संदेह और भी

१. यज्ञोपवीत। २. मासिक धर्मसे।

बढ़ गया था, परन्तु उसे अपना सन्देह मिटानेका कोई अच्छा उपाय नहीं मिलता था।

यहां वल गांवमें धरणीजटको पापका उदय आया और उसका सब धन नाश हो गया और भिखारी बन गया। जब उसे मालूम हुआ कि कपिल रत्नसंचयपुरमें है और अच्छी हालतमें है, तो वह कपिलके पास गया।

कपिलको अपना भेद खुल जानेका बड़ा डर रहता था और धरणीजटको आया देखकर तो वह बहुत ही घबराया। यह कहीं मेरी पोल न खोल दे; इसलिये कपिलने धरणीजटका बड़ा सन्मान किया और अच्छी तरहसे रक्खा। उसने धरणीजटको बहुतसा धन दिया और अपनी स्त्री तथा पहिचानके लोगोंको मालूम करा दिया कि ये मेरे पिताजी हैं। धनके लोभमें आकर धरणीजटने भी कह दिया कि, कपिल मेरा ही पुत्र है। ठीक है, लोभके वशमें पड़कर संसारके जीव बुरेसे बुरे काम कर डालते हैं।

एक दिन कपिल कहीं दूसरे गांवको गया था कि, सत्यभामाने धरणीजटको बहुतसा धन दिया और एकान्तमें पूछा कि आप सच बतावें, ये आपके ही पुत्र हैं या नहीं? बिचारा धरणीजट पहिले तो बड़ी चिन्तामें पड़ गया, पर अन्तमें उसने सच बात कह सुनाई कि, कपिल मेरा पुत्र नहीं है, एक शूद्रका लड़का है। बस, धरणीजटने सच हाल कहकर रत्नसंचयपुरसे चल दिया।

जब सत्यभामाको मालूम हो गया कि कपिल कपटी है, तब

उसने कपिलके साथ बोलना चालना बिलकुल बन्द कर दिया और राजा श्रीषेणके पास जाकर सब हाल कहा।

राजा श्रीषेणने इस बातका पूरा पता लगाया और जब उन्हें अच्छी तरह मालुम हो गया कि कपिल शूद्रका पुत्र है; उसने धोखा देकर ब्राह्मणकी बेटीसे विवाह किया है तो राजाने कपिलको गधेपर बैठालकर अपने राज्यसे निकाल दिया और सत्यभामाको अपने महलोंमें पुत्रीके समान रख लिया।

एक दिन राजा श्रीषेणके यहांसे **आदित्यगति** और **अरिंजय,** ये दो मुनिराज आहार लेनेको निकले। राजाने उन्हें भक्तिभाव पूर्वक पड़गाहा और निर्दोष आहार दिया। श्रीषेण राजाकी दोनों रानियों **सिंहनंदिता** और **अनंदिताने** तथा धर्मपुत्री **सत्यभामाने** उनके आहार दानकी बड़ी बडाई की। अंतराय रहित आहार देनेसे राजाके यहां देवताओंने रत्न वर्षाये, फूल वर्षाये, दुंदुभि बाजे बजाये, मंद मंद सुगंधित हवा चलाई, और जय जय शब्द किया।

राजा श्रीषेणने बहुत वर्षों तक राज्य करके जब शरीर छोड़ा तो मर कर आहारदानके प्रभावसे उत्तम भोगभूमिमें उपजे।

---

१. भोगभूमिमें माताके पेटसे लड़का और लड़की एक साथ पैदा होते हैं। उन्हें जुगला जुगलिया कहते हैं। ज्यों ही जुगला जुगली पैदा होते हैं, त्योंही उनके माता पिता मर जाते हैं, और वे मरकर देव गतिमें जाते हैं। और वे छोटे बच्चे पांवका अंगूठा चूषते चूषते ४९ दिनमें जवान हो जाते हैं, सो वे ही आपसमें स्त्री पुरुष बन जाते हैं। वहां कल्पवृक्ष होते

दोनो रानियों और सत्यभामाने आहारदानकी बड़ाई की थी इसलिये वे भी वहीं भोगभूमिमें उपजीं ।

राजा श्रीषेणका जीव बहुत काल तक भोगभूमिका आराम भोगकर स्वर्गमें देव हुआ, और वहांसे चयकर चक्रवर्ती राजा हुए । ऐसे ही मनुष्य और देवके थोड़े भव धरके सोलवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ हुए । उन भगवान्ने राज्यका सुख भोगकर तप धारण किया । तपके प्रभावसे वे केवलज्ञानी हो गये और संसारके सब जीवोंके हितका उपदेश करते रहे । अंतमें आयु पूरी होने-पर मोक्षको पधारे ।

देखो आहारदान देनेसे, राजा श्रीषेणके जीवने ऊंचे ऊंचे पद पाये और तीर्थंकर पदमें जगतका कल्याण करके मोक्षको पधारे ।

---

(२०) श्री वृषभसेनाकी कथा ।

जिस समयकी यह कहानी है उस समय इसी हिन्दुस्थान देशके कावेरी नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, उसकी लड़कीका नाम नागश्री था । वह मंदिरजीमें झाड़ने बुहारनेका काम किया करती थी ।

है उनमें मनुष्योंको सब आरामकी सामग्री मिलती है । कोई बीमारी, टट्टी, पेशाब, पसीना आदिकी अड़चन नहीं भोगना पड़ती है । न तो बहुत गर्मी ही पड़ती है और न बहुत ठंड पड़ती है । ढोरोंके चरनेके लिये आपहीसे घास उगता है । डांस, मच्छर, खटमल आदि नहीं उपजते ।

एक दिन संध्याके समय मंदिरजीमें, मुनिदत्त मुनि ध्यान कर रहे थे कि, वह नागश्री झाड़नेको आई। और झाड़ते झाड़ते उस जगहपर पहुंची जहां मुनि महाराज बैठे हुए थे। नागश्रीने मुनिसे कहा कि आप यहांसे उठिये, मुझे यहां झाड़ना है। मुनि महाराज ध्यान पूरा हुए बिना उठ नहीं सक्ते थे इससे नहीं उठे, और ज्योंके त्यों बैठे रहे। नागश्रीके कई बार कहनेपर भी जब मुनि महाराज नहीं उठे, तब उसने क्रोधमें आकर बहुतसी गालियां सुनाई, और सब जगहका कूडा कचरा इकट्ठा करके मुनिके ऊपर डाल दिया, जिससे वे बिलकुल दब गये, । मूर्ख नागश्री द्वारा ऐसा कठिन उपद्रव होने पर भी, वे ज्ञानी मुनिराज, अपने ध्यानसे बिलकुल नहीं चिगे, पर और भी ध्यानमें लीन हो गये।

सवेरा होनेपर जब मंदिरको राजा गये और मुनिको सांस चलनेसे वह कूड़े कचरेका ढ़ेर उन्हे हीलता हुआ दिखाई दिया, तब उन्होंने उसी समय उस कचरेको हटवाया, तो वे धीर वीर मुनिराज बाहिर निकल आये। राजाने मुनिके चरणोंकी पूजा कि, और चले गये। नागश्री भी उसी समय मुनिराजके पास गई तो उन्हें पहिले ही के समान शान्तचित्त देखा। इससे नागश्रीके चित्तमें मुनिके ऊपर बडो भक्ति उपजी। वह अपनी मूर्खतापर बहुत पस्ताई और मुनिसे अपने अपराधकी क्षमा कराई। उसने मुनिका कष्ट दूर करनेको भांति भांतिकी **दवाइयां** कीं और खूब सेवा चाकरी करके उनको तंदुरुस्त किया।

जब आयु पूरी होनेपर धनश्रीने शरीर छोड़ा तो, औषधिदानके प्रभावसे वह उसी नगरके **धनपति** सेठकी पुत्री हुई।

सेठजीने उसका नाम **वृषभसेना** रक्खा। वह बड़ी रूपवान् और भाग्यवान् थी।

एक दिन वृषभसेनाको उसकी दासी **रूपवती** स्नान करा रही थी। सो स्नान करानेसे जो पानी गिरता था वह बहकर पास ही के एक गड्ढेमें भरता जा रहा था। अकस्मात् ही एक रोगी कुत्ता वहां आया और उस गड्ढेमें गिर पड़ा। थोडी देरके बाद जब वह कुत्ता उस गड्ढेमेंसे निकला तो बिलकुल निरोग हो गया। कुत्तेकी यह हालत देखकर रूपवती दासीको बड़ा अचरज हुआ। उसने मनमें विचारा कि, वृषभसेनाके स्नानका जल होनेके कारण, ऐसा हुआ जान पड़ता है। वह थोड़ासा पानी अपने घर ले गई और अपनी माताकी आंखोंको लगाया। रूपवतीकी माताकी आंखें जो कई वर्षोंसे बिगड़ रही थीं, यह पानी लगाते ही आराम हो गईं और अच्छी तरह सूझने लगा। जब शहरमें यह वार्ता फैल गई तो सब प्रकारके रोगी, रूपवतीके यहां आने लगे और आराम पाने लगे।

उस समय वहांके राजा उग्रसेन थे। उन्होंने अपने मंत्री **रणपिंगलको**, अपने शत्रु राजा **मेघपिंगल**पर लड़नेको भेजा। राजा **मेघपिंगलको** जब अपनी जीत दिखाई न दी, तो जिन कुओंका पानी रणपिंगलकी सेनाके पीनेके काम आता था, उनमें विष डलवा दिया, जिससे बहुतसे सिपाही तो मर गये और बहुतसे बिमार हो गये। तब रणपिंगलको बची हुई फौज लेकर वापिस आना पड़ा। पर वहां आनेपर वृषभसेनाके स्नानके जलसे सबको आराम हो गया।

जब उग्रसेनको, राजा मेघपिंगलकी लुच्चाई मालूम हुई तब वे खुद ही सेना लेकर मेघपिंगलसे लडाई करने गये। पर मेघपिंगलने फिर भी वैसा ही किया जिससे राजा उग्रसेन और उनकी सब सेनाकी तबियत बिगड़ गई और उन्हें लाचार होकर लौट आना पड़ा। राजधानीमें आनेपर राजाने मंत्रीकी सलाहसे वृषभसेनाके स्नानका जल मँगवाया। जब राजाके नौकर, वृषभसेनाके पिता धनपति सेठके यहां जल मांगनेको गये तो सेठानीने अपने पतिसे कहा कि, हे स्वामी! अपनी बेटीके स्नानका जल राजाके ऊपर छिड़का जावे, यह तो ठीक नहीं जँचता। सेठने उत्तर दिया कि, हे प्रिये! अपनको राजासे कुछ छल नहीं करना है, सब सच्चा हाल उन्हें सुना दिया जावेगा।

धनपति सेठने रूपवती दासीके द्वारा वृषभसेनाके स्नानका जल राजाके पास भेज दिया और रूपवतीने पहिले राजाको मालूम करा दिया कि यह वृषभसेनाके स्नानका जल है, फिर राजाके माथेपर छिड़क दिया, जिससे उन्हें भी तुरत आराम हो गया।

राजा उग्रसेनको जब वृषभसेनाकी ऐसी महिमा मालूम हुई तो उन्होंने धनपति सेठको अपने पास बुलाया और कहा कि आप अपनी लडकीका विवाह मेरे साथ कर दें।

सेठजीने उत्तर दिया कि, हे महाराज! हमारे समान तुच्छ मनुष्यके साथ आप नाता करना चाहते हैं, यह हमारे बडे भाग्यकी बात है। बेटी वृषभसेना व्याहके योग्य भी हो गई है, और आपके साथ उसका विबाह करनेको मैं तैयार हूं, परन्तु मुझे यह कहना है कि, आपको अष्टान्हिकाजीके दिनोंमें भगवान्‌की पूजा

बड़े साजवाजसे कराना पड़ेगी, और जो पशु पक्षी पींजरोंमें बन्द हैं तथा जो कैदी जेहलखानोंमें हैं, उन्हें छोड़ देना पड़ेगा।

राजा उग्रसेनने, सेठजीकी ये सब बातें मान लीं और वृषभसेनासे विवाह करा लिया, उसे पट्टरानी बनाकर सुखसे रहने लगे। परन्तु वृषभसेना संसारके सुखों हीमें नहीं भूल गई, वह भगवान्‌की पूजा, स्वाध्याय, शील, संयम, पात्रदान आदिमें सदा तत्पर रहती थी।

राजा उग्रसेनने सेठ धनपतिको दिये हुए वचन पर सब पशु पक्षियों और कैदियोंको छोड़ दिया था, परन्तु बनारसके पृथ्वीचन्द्रको नहीं छोड़ा था; क्योंकि वह बहुत दुष्ट था।

राजा पृथ्वीचन्द्रकी रानी नारायणदत्ता, बनारसमें रहती थी। उसे बड़ा भरोसा था कि, इस समयपर मेरे पति अवश्य छूट जावेंगे, परन्तु जब ऐसा न हुआ तो उसने बनारसमें वृषभ-सेनाके नामसे कई दानशालाएं बनवाईं और वे इसलिये बनवाई थीं कि, जिससे रानी वृषभसेनाको बनारसका हाल मालूम होवे और उन्हें यह भी मालूम होवे कि, महाराजने मेरे पतिको अब तक नहीं छोड़ा है।

उन दानशालाओंमें हर किसी मनुष्यको बढ़ियांसे बढ़ियां भोजन कराये जाते थे, इससे उन दानशालाओंका नाम बहुत बढ़ गया था। कावेरीके कई ब्राह्मण बनारसको गये और दानशाला-ओंमें भोजन किये तो उनकी बड़ाई करते हुए आये।

जब रूपवती दासीको मालूम हुआ कि वृषभसेनाके नामकी बनारसमें दानशालाएँ हैं तो उसने वृषभसेनासे कहा कि, तुमने बनारसमें दानशालाएं बनवाईं और मुझे मालूम भी नहीं कराया! वृषभसेनाने उत्तर दिया कि, मैंने बनारसमें कोई दानशाला नहीं खुलवाई है।

तब रूपवतीने बनारसको नौकर भेजे तथा दानशालाओंका सच्चा पता लगाया। और जब रूपवतीको मालूम हुआ कि, नारायणदत्ताने अपने पतिका छुटकारा करानेके लिये यह उपाय रचा है तब उसने महारानी वृषभसेनाको उसका हाल सुनाया और वृषभसेनाने राजा उग्रसेनसे विनती करके, राजा पृथ्वीचन्द्रको छुट्टी दिला दी।

राजा पृथ्वीचन्द्रने रानी वृषभसेनाका बड़ा उपकार माना। उसने अपनी भक्ति दिखानेके लिये राजा उग्रसेन और रानी वृषभसेनाका चित्र बनवाया तथा उन दोनोंके चरणोंमें मस्तक रक्खे हुए अपना चित्र बनवाया और वह चित्र राजा रानीको भेंटमें देकर कहा कि, मैं आप लोगोंकी कृपाको जीवनभर नहीं भूल सक्ता हूं। राजा उग्रसेन, पृथ्वीचन्द्रकी विनयसे बहुत प्रसन्न हुए।

पहिले लिख आये हैं कि राजा मेघपिंगल, राजा उग्रसेनका शत्रु था। सो वह मेघपिंगल राजा पृथ्वीचन्द्रसे बहुत डरता था। और जब राजा पृथ्वीचन्द्र राजा उग्रसेनके सेवक बन गये तो मेघपिंगल भी कावेरी आकर उग्रसेनका दास बन गया।

एक दिन राजा उग्रसेनके पास दूसरे छोटे राजाओंके यहांसे

बहुतसा धन, सामान और दो बढ़ियां दुशाले भेंटमें आये सो राजाने उसमेंका आधा धन सामान और एक दुशाला तो रानी वृषभसेनाको दे दिया और आधा धन सामान और एक दुशाला, राजा मेघपिंगलको सौंप दिया।

एक दिन मेघपिंगलकी रानी, वह भेंटका दुशाला ओढ़कर वृषभसेनाके महलोंको सो गई सो कपड़े पहिरने उतारनेमें, वे दुशाले आपसमें, भूलसे बदल गये। अर्थात् रानी वृषभसेनाका दुशाला मेघपिंगलकी रानीके यहां चला गया और मेघपिंगलकी रानीका दुशाला रानी वृषभसेनाके पास रह गया।

कुछ दिनोंके बाद राजा मेघपिंगल राजा उग्रसेनसे मिलनेको गये। तो वही बदला हुआ दुशाला ओढ़े चले गये। उस दुशालेको ओढ़े हुए देखकर राजा उग्रसेनको कुछ संदेह हो गया, और उनके चहरे पर क्रोध झलकने लगा। उन्हें यह शक हुई कि मेघपिंगल, वृषभसेनासे यारी रखता है जब मेघपिंगलने राजाको क्रोधित देखा, तो उसने वहां रहना ठीक नहीं समझा और दूसरे देशको चल दिया।

जब राजा उग्रसेनको मालूम हुआ कि मेघपिंगल भाग गया है तब तो उनका संदेह और भी बढ़ गया। उन्होंने राजा मेघपिंगलके पकड़ लानेको सवार दौड़ाये और आप रानी वृषभसेनाके महलमें गये, तो उसके पास मेघपिंगलवाला दुशाला[1] पाया। तब

---

१ दोनों दुशाले एक हीसे थे उनका अंतर बड़ी कठिनाईसे जान पड़ता था।

तो राजा उग्रसेनको पक्का सन्देह हो गया। उनके क्रोधका ठिकाना न रहा। तुरन्त ही रानी वृषभसेनाको समुद्रमें ढकेल देनेकी आज्ञा दे दी।

अरे! ऐसे क्रोधको धिक्कार हो!! जिसके कारण भले बुरेका कुछ ज्ञान ही नहीं रहता, और जिसके कारणसे जीव बड़ी बड़ी बुराइयां कर बैठता है। सचमुच ही क्रोध एक प्रकारकी शराब है, जिसके पी लेनेसे मनुष्यको कुछ सुधि बुधि ही नहीं रहती।

राजाकी आज्ञासे महारानी वृषभसेना समुद्रमें तो फेंक दी गई, परन्तु ऐसा करनेसे उस **शीलवती**की बिलकुल हानि नहीं हुई। वह अपने सत्य शीलपर विश्वास रखके भगवान्‌का ध्यान करने लगी। उसने यह आकंड़ी ले ली कि, यदि संकटसे छूटूंगी और शरीरमें प्राण रहेंगे तो जिनेश्वरी दीक्षा धारण करूंगी।

समुद्रमें ढकेलते ही रानी वृषभसेनाके पुन्यके प्रभावसे स्वर्गोंके देवता दौड़े आये। समुद्र हीमें सिंघासन रचकर उसपर वृषभसेनाको विराजमान किया और बड़ी भक्तिभाव सहित जय! जय! जय! शब्द किया। जब राजाने यह हाल सुना तो वे अपनी मूर्खतापर बहुत पछताये, वे रानी वृषभसेनाके पास आये और अपनी भूल क्षमा कराई।

पुण्यके उदयसे रानी वृषभसेनाको श्री **गुणधर** मुनिके दर्शन हुए। वे मुनि महा तपी और अवधि ज्ञानी थे। वृषभसेना

मुनिराजके चरणोंमें लेट गई, और हाथ जोड़कर पूछने लगी कि हे महाराज ! मैंने पिछले जन्ममें कैसे काम किये थे जिनका ऐसा फल पाया ।

तब मुनिराजने उसे नागश्रीके भवका सब हाल सुना दिया और कहा कि, मुनिको औषधि देने और उनकी सेवा चाकरी करनेसे तो तूने सुन्दर और सर्व औषधिमय शरीर पाया है और मुनिकी निन्दा करनेसे तुझे झूठा कलंक लगा है तथा उनके ऊपर कूड़ा कचरा डालनेसे तू समुद्रमें पटकी गई है ।

वृषभसेना दीक्षा लेनेका विचार तो कर ही चुकी थी, और मुनिराजके वचन सुनकर उसका वैराग्य बहुत ही बढ़ गया । अपने पतिके बहुत समझानेपर भी वह घरको नहीं गई । उनसे क्षमा मांगकर गुणधर मुनिके पास दीक्षा ले ली और खूब तप किया । अन्तमें समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्गलोकमें देव हुई ।

देखो, औषधिदानके प्रभावसे, नागश्रीके जीवने, वृषभसेनाके भवमें औषधिऋद्धिमय शरीर पाया जिसके स्नानका जल राजाके मस्तकपर डाला गया ।

समझमें आता है कि, जो मनुष्य बहुधा रोगी रहा करते हैं, उन्होंने कभी औषधिदान नहीं दिया है, अथवा औषधिदानमें विघ्न किया है । इसलिये हम सबको उचित है कि, अपनी शक्ति न छिपाकर औषधिदान देवें, रोगियोंकी सहायता करें तथा उनकी सेवा चाकरी करें ।

(२१) कौंडेश मुनिकी कहानी ।

जिस समयकी यह कथा है उस समय इसी हिन्दुस्थानमें कुरुमरी नामका एक गांव था वहां एक ग्वाला रहता था । उसका नाम **गोविन्द** था । एक दिन वह जंगलमें गया और उसने एक वृक्षकी खोखटमें एक शास्त्रजी रक्खे हुए देखे । गोविन्द उन्हें अपने घरपर ले आया और रोज रोज उनकी पूजा करने लगा। वह लिखना वांचना तो जानता ही नहीं था इसलिये पूजा करके संतोष मान लिया करता था। एक दिन गोविन्दको श्री **पद्मनन्दि** मुनिके दर्शन हुए तो उसने वे ग्रन्थ, उन मुनिराजको दे दिये ।

पद्मनन्दि मुनि बहुत काल तक उस ग्रंथका स्वाध्याय करते रहे और उस ग्रंथके द्वारा भव्य जीवोंको उपदेश करते रहे । अन्तमें साधुओंकी रीतिके अनुसार वृक्षकी खोखटमें रखके चले गये।

पद्मनंदि मुनिके चले जानेपर भी गोविंद शास्त्रजीकी पूजा, प्रतिदिन किया करता था और अपनेको धन्य मानता था। भाग्यसे गोविन्दको सांपने काट खाया और वह मर गया । मरते समय गोविन्दने **निदान** किया (निदानका ऐसा स्वभाव होता है कि इस जन्ममें जितना पुन्यबंध किया है उससे कमकी वस्तुकी चाह करें तो दूसरे जन्ममें मिल जाती है, पर उससे अधिककी चाह करें तो नहीं मिलती । जैसे किसी जीवने ऐसा पुन्यबंध किया कि जिसके फलसे वह चौथे स्वर्गमें उपजे । अब वह मरते समय इच्छा करें कि मैं दूसरे ही स्वर्गमें उपज जाऊं तो उपज जावेगा। यदि वह मरते समय ऐसा इरादा करैं कि मैं सोलहवें स्वर्गमें उपजूं, तो नहीं उपजेगा ।)

सो वह गोविंद निदान करनेके कारण उसी कुरुमरी गांवमें एक पटेलके यहां पुत्र हुआ। पूर्व जन्ममें इसने मुनिको शास्त्रदान करके बहुत पुन्यबंध किया था, इसलिये वह बालक बहुत ही रूपवान और भाग्यवान हुआ।

एक दिन वे ही पद्मनंदि मुनि विहार करते हुए कुरुमरी नगरमें आये, उन्हें देखकर उस बालकको, पूर्व जन्मकी वे सब बातें याद आईं, तब उसने मुनिको नमस्कार करके उनसे दीक्षा ले ली और खूब तप किया। अन्तमें आयु पूरी होनेपर जब शरीर छोड़ा तो पुण्यके उदयसे कौंडेश राजा हुए। वे बडे ही शूरवीर, बलवान और रूपवान थे।

एक दिन राजा कौंडेशको वैराग्य उपजा सो संसार और शरीर आदिको अथिर जानकर जिन दीक्षा ले ली और आत्माके गुणोंका चिंतवन करने लगे। पूर्व जन्ममें कौंडेश मुनिने, गोविंद ग्वालके भवमें, शास्त्रदान दिया था, जिसके प्रभावसे वे श्रुतकेवली होगये।

ठीक है, जिस शास्त्रदानके प्रसादसे केवली पद प्राप्त होता है उसके प्रसादसे श्रुत केवली होना तो सहज ही है ऐसा जानकर हम सबको उचित है कि ज्ञान दानमें रुचि लगावें। आप पढें दूसरोंको पढ़ावें वा पढ़वावें, और पुस्तक, पाठशाला इनाम आदिके द्वारा ज्ञानका प्रचार करें।

---

१. जिन मुनियोंको बारह अंगोंका ज्ञान होता है उन्हें श्रुत-केवली कहते हैं। ये श्रुतकेवली थोड़े ही भव धरके मोक्ष जाते हैं।

२. केवलज्ञानी। ३ पांच ज्ञानमेंसे श्रुत ज्ञानका ही दान हो सकता है। ४ अपनेको आत्मा-ज्ञान देना भी ज्ञान दान है।

ज्ञानदानकी ऐसी महिमा है कि ज्ञानदान देते ही ज्ञानावर्णी कर्म निर्बल हो जाता है सो बिना सीखे अथवा थोड़ा सीखनेसे बहुत विद्या आती है ।

---

(२२) अभयदानी सुअरकी कथा ।

मालवा देशमें घट नामका एक गांव था । वहां एक नाई और एक कुम्हार रहते थे । नाईका नाम धर्मिल और कुम्हारका नाम देवल था । वे दोनों ही धनवान् थे, सो उन दोनोंने मिलकर एक धर्मशाला बनवा दी थी ।

एक दिन देवलने एक मुनि महाराजको लाकर धर्मशालामें ठहरा दिया और आप घरको चला गया । जब धर्मिलको यह मालूम हुआ तो उसने मुनिको हाथ पकड़कर निकाल दिया और एक पाखंडी साधुको लाकर धर्मशालामें ठहरा दिया ।

धर्मिलने मुनि महाराजको धर्मशालासे निकालकर उनका बड़ा अपमान किया था, परन्तु मुनिने इसका कुछ बुरा न माना। वे पहिलेके समान ही शान्तचित्त रहे और धर्मशालासे निकलकर बाहर एक वृक्षके नीचे ध्यानमें लीन हो गये । डांस मच्छरने उन्हें बहुत त्रास दिया, उसे उन्होंने बड़ी धीरतासे सहा ।

जब सवेरे धर्मशालामें देवल आया और उसने वहां मुनि महाराजको न पाया, उन्हें एक वृक्षके नीचे ध्यान करते देखा तो धर्मिलकी मूर्खतापर उसे बड़ा क्रोध आया । धर्मिलके आनेपर उसे खूब डांट लगाई । पर धर्मिल भी देवलकी फटकारको सहन

न कर सका, और आपसमें बातचीत होने लगी। वह बढ़ते बढ़ते यहां तक बढ़ गई कि दोनोंकी मारामारी होने लगी और दोनों आपसमें लड़ मरे।

खोटे भावोंसे मरनेके कारण देवल, जो कुम्हार था, वह तो मरकर **सुअर** हुआ, और धर्मिल जो नाई था वह मरकर **बाघ** हुआ। पहाड़की जिस गुफामें सुअर रहता था उसमें समाधिगुप्ति और त्रिगुप्ति नामके दो मुनिराज आके ठहर गये। जब सुअरने मुनिराजोंको देखा तो उसे पूर्व जन्मकी सब बातें याद आ गई। उसने मुनिके चरणोंको नमस्कार किया और उनका उपदेश सुनकर श्रावकके व्रत ग्रहण किये।

पर धर्मिलका जीव जो बाघ हुआ था, मनुष्योंकी बास पाकर उस गुफाकी ओर आया और चाहा कि, दोनों मुनियोंको खा जावें। परन्तु सुअरने ज्योंही उसे आते देखा त्यों ही वह गुफाके द्वार पर खड़ा होगया। दोनोंकी आपसमें खूब लड़ाई हुई। बाघने सुअरको अपने दांतों और नखोंसे घायल कर दिया और सुअरने अपनी खीसोंसे उसे अधमरा कर दिया, अंतमें वे दोनों ही मर गये।

दोनोंके भावोंमें बड़ाभारी अंतर था। सुअरके भाव तो मुनियोंकी रक्षाके थे और उसने प्राण रहते तक उनकी रक्षा की, जिससे वह सुअरका जीव शरीर छोड़कर स्वर्गमें देवता हुआ। और व्याघ्रके भाव, मुनियोंको खा जानेके थे, सो वह दुष्ट मरकर नर्कमें गया।

---

१. शूकर। २. पूर्वभवकी बातें याद आनेको जातिस्मरण कहते हैं। ३. गंध।

हम सबको उचित है कि जीवोंकी रक्षा करके अभयदान देवें। जब जीव कर्मबंधनसे छूटकर मुक्त हो जाता है तब सर्वथा निर्भय होता है। इसलिये जीवोंको मोक्ष मार्गमें लगा देना सच्चा अभयदान है।

गीता छंद मात्रा २८।

आहार दे **श्रीषेणने** हो, तीर्थपति जग हित किया।
बाई **वृषभसेना सतीने**, रोग नाशक तन लिया॥
कौंडेशजी श्रुत दान दे, श्रुत ज्ञानमें पंडित भये।
दे अभय मुनिको दिव्य शूकर, स्वर्ग सद्‌गतिमें गये॥ १॥

---

(२३) एक मेंडककी कहानी।

राजगृही नगरमें एक सेठ रहता था। उसका नाम **नागदत्त** और उसकी सेठानीका नाम **भवदत्ता** था। सेठ नागदत्तके स्वभावमें मायाचारी अधिक थी। अर्थात् कहते थे कुछ और, करते थे कुछ और ही, तथा मनमें कुछ और ही इरादा रखते थे। जब सेठजीने अपनी आयु पूर्ण होनेपर शरीर छोड़ा सो मरकर अपने ही आंगनकी बावड़ीमें **मेंडक** हुए। ठीक है, मायाचारी करनेवाले मनुष्यको पशु होना पड़ता है। इसलिये श्री गुरु शिक्षा देते हैं कि, "मनमें होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसों करिये।"

जब मेंडकने अपनी पूर्व जन्मकी स्त्री भवदत्ताको बावडीपर देखा, तो उसे पूर्व भवकी याद आगई। सो वह मेंडक, भवदत्ताके कपड़ोंपर उछल कर गिरा। नागदत्ताने कपड़े फटकार कर मेंडकको

हटा दिया, पर फिर भी यह भवदत्ताके ऊपर कूद आया, और भवदत्ताने फिर हटा दिया। ऐसा कई बार होनेसे भवदत्ताने सोचा कि इस मेंडकके जीव और मुझसे पूर्व जन्मका कुछ संबंध होगा इसी कारण वह मुझसे प्रेम प्रगट करता है।

भाग्यसे भवदत्ता सेठानीको सुव्रत मुनिराजके दर्शन हुए। सो सेठानीने मुनिको नमस्कार करके अपने साथ मेंडकका संबंध पूछा। उन अवधिज्ञानी मुनिराजने उत्तर दिया कि, वह मेंडक तेरे पतिका जीव है। जब भवदत्ता सेठानीको यह मालूम हुआ कि मेंडक मेरे पतिका जीव है तब वह उसको बड़े आरामसे रखने लगी और मेंड़क भी आनन्दसे रहने लगा। ठीक है, मोहकी ऐसी ही महिमा है।

एक दिन राजगृही नगरीके पासके विपुलाचल पर्वतपर, भगवान् **वीरनाथ स्वामीका** समवशरण आया। सो वहां राजा श्रेणिक और सब वस्तीके पुरुष स्त्री, अष्टद्रव्य आदि पूजाकी सामग्री लेकर भगवान्‌की वन्दनाको गये और भक्ति भावसहित वन्दन पूजन करके अपने योग्य स्थानपर उपदेश सुननेको बैठ गये।

सेठानी भवदत्ता भी भगवान्‌की पूजाके लिये चली गई थी कि, मेंडकने आकाशमें जाते हुए देवोंको देखा जिससे उसे पूर्वभवकी याद आगई और भगवान्‌की पूजा करनेकी इच्छा हुई, सो बावड़ीमेंसे कमलकी कली तोड़के और उसे मुंहमें दवाके भगवान्‌की पूजाको चला। मेंडक ज्यों ज्यों आगे बढ़ता था त्यों त्यों उसकी रुचि जिन पूजामें बढ़ती ही जाती थी।

उस दिन भीड़ बहुत थी, लाखों देवता आकाशके मार्गसे आरहे थे, और हजारों मनुष्य स्त्री पशु आदि सड़कों परसे जारहे थे, तथा मेंडक भी उत्साहका प्रेरा बड़े मोजसे चला जारहा था। इतनेमें एक हाथीका पांव मेंडकके ऊपर पड़ गया और उसका जीवन समाप्त हो गया अर्थात् वह मेंडक मर गया।

मेंडकका भाव जिन पूजा ही में बसता था। सो पूजाके प्रेमसे जीवोंकी जो गति होती है वही गति मेंडककी हुई। अर्थात् वह मरकर देवगतिमें बड़ी बड़ी ऋद्धियोंका धारक हुआ। सो थोड़ी ही देरमें जवान हो गया। उसने अवधिज्ञानसे अपने पूर्व जन्मकी बात विचारी और तुरन्त ही विमानमें बैठकर वहीं भगवानके समवशरणमें गया। भगवानकी पूजामें उसका बहुत प्रेम बढ़ रहा था इसलिये स्वर्गमें एक पलभर भी न ठहरा तुरन्त चला गया।

उसने, मेंडककी पर्यायसे ज्ञान पाया था इसलिये अपने मुकुटमें मेंडकका आकार बना लिया था। जब वह देव भगवान्की पूजन वन्दन करके देवताओंकी सभामें गया तो राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे[1] पूछा कि, हे प्रभु! मैंने देवताओंके मुकुटमें मेंडकका आकार कभी नहीं देखा है। इस देवके मुकुटमें मेंडकका चिन्ह क्यों है?

राजा श्रेणिकका यह प्रश्न सुनकर गौतमस्वामीने नागदत्तके भवसे लगाकर सब हाल सुनाया। उसे सुनकर राजा श्रेणिक और सब लोगोंको जिन पूजामें बड़ी रुचि हुई और सबका संदेह दूर होगया।

---

१. महावीर स्वामीके समवशरणके सबसे बड़े आचार्य।

देखो, मेंड़कने कमलकी कलीसे पूजा करनेकी केवल इच्छा ही की थी, उसका ऐसा उत्तम फल हुआ। फिर जो मनुष्य अष्टद्रव्यसे भक्ति भावसहित पूजा करेंगे वे अपने आत्मा-की भलाई क्यों न करेंगे? अवश्य ही करेंगे। ऐसा जानकर जिन भगवान् आदिकी पूजा प्रति दिन करना चाहिये और अपने आत्माको पवित्र करना चाहिये।

इक कूपके मेंडूकने इक, कमल कलिका मुख धरी।
प्रभु पूजनेको जा रहा था, लात गजकी तन परी॥
परणाम थे प्रभु भक्तिमें सो, महा ऋद्धक गति लही।
विधि सहित जे नर करहिं पूजा, लहहिं शिवपुरकी मही॥२॥

मंगल कामनाएं।

आत्माका निज स्वभाव ज्ञान है। अर्थात् आत्मा, ज्ञानका पिंड है। उस ज्ञानको अज्ञान रूप करनेवाला मोह है, और मोहके जीतनेके उपाय सम्यक्त्व और चारित्र हैं। इन्हींके ग्रहण करनेका उपदेश इस ग्रंथमें लिखा है। आशा है कि यह ग्रंथ कल्पांत तक संसारमें रहेगा और भव्य जीव सम्यक्त्व तथा चारित्र ग्रहण करके अपने आत्माको सम्यक्ज्ञान रूप बनावेंगे।

तोटक छंद।

सब मित्र पवित्र चरित्र धरो,
अरु शिक्षित पुत्र कलत्र करो॥
पुनि कौशल काव्य कला विधिसे,
सज दो इस भारतको निधिसे॥ १ ॥

इति शुभं।

हमारी छपाई हुई पुस्तकें मिलनेके ठिकानें।

१–बुद्धिलाल श्रावक, पाठक, जैनशाला, लाडनूं-जोधपुर

२–सद्बोधरत्नाकर कार्यालय, बड़ा बाजार–सागर म० प्र०

३–श्री जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय, गिरगांव-बंबई

४–श्री हिन्दी जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय, नं. ४ बंबई

५–श्री दिगम्बर जैन पुस्तकालय, चंदावाड़ी–सूरत

६–श्री कुंदनलालजी जैन, चंदावाड़ी पो. नं. ४ बंबई

सूचना–ऊपर लिखे हुए सब जैन पुस्तकालयोंकी छपाई हुई पुस्तकें हमारे यहांसे वी. पी. द्वारा भेजी जाती हैं।

बुद्धिलाल श्रावक—
लाडनूं (मारवाड़)